

एक और जन्म

तटवर्ति राज्यलक्ष्मी



एक और जन्म



लेखक : तटवर्ति राज्यलक्ष्मी

FOR BOOKS CONTACT :

तटवर्ती वीर राघव राव

भीमावरम - 534201.

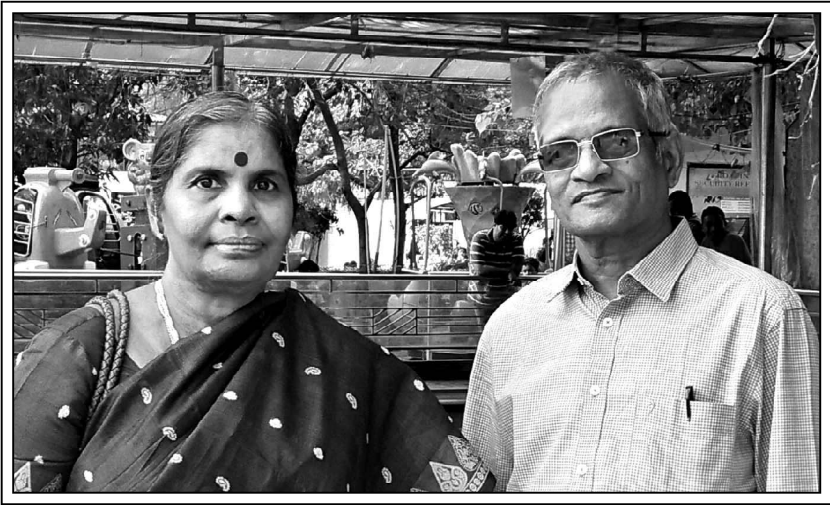
Ph: 9440309812

email : balajipyramid.bvrm@gmail.com

Rs.160/-

अनुक्रमणिका

1. जनम	3
2. शिक्षा	5
3. बचपन	9
4. विवाह	11
5. संसार	13
6. दिव्य मंदिर में ध्यान मंदिर	15
7. पिरामिडों की विशिष्टता	17
8. मेरा ध्यान प्रवेश	18
9. समाजसेवा	22
10. आध्यात्मिकता	25
11. मेरा पुनर्जन्म	28
12. मेरा ध्यान अभियान	36
13. पत्नी जी: जिन्हे मैंने जाना	45
14. गुरु पूर्णिमा के दिन मेरे ध्यान में पत्नी जी के बारे में एक सन्देश	47
15. गुरुओं की शक्तियाँ	49
16. पत्नी जी में देखा माँ का प्यार	52
17. परमात्मा की कृपा - गुरु की कृपा	54
18. इच्छा - संघर्ष	56
19. मानव का मतलब	58
20. ध्यान कि जरूरतें	62
21. ध्यान अभ्यास में बढ़ने के लिए	66
22. साधक विकसित होने के लिए निरंतर अभ्यास	74
23. साधना करने वालों के लिए बाधाएँ	77
24. पाँच भ्रम	80
25. साधक की विशेषताएं	82
26. साधक को जाननेवाले विषय	86
27. ध्यान साधकों द्वारा पालन किए जाने वाले पाँच नियम	88
28. आत्म-ज्ञान प्राप्त करने के लिए अनुसरणीय विषय	95
29. आशा	101
30. तीन प्रकार की त्रुटियाँ	103
31. संस्कार और गंध (वासनाएं)	105
32. एक अच्छे साधक कि विशेषताएं	107
33. साधक की बाधाएँ	112
34. संकल्प भेद	113
35. पात्र शुद्धि - पदार्थ शुद्धि - पाक शुद्धि	116



जन्म

मेरा नाम राज्यलक्ष्मी है और मेरे पति का नाम तटवर्ति वीर राघवराव जी है। हम भीमावरम गांव, पश्चिम गोदावरी जिला से हैं।

पिता का नाम सत्यनारायणमूर्ति और मां रत्नावती है हमारा गृहनगर पूर्वी गोदावरी जिले का “तुनी” गांव है।

मेरे दादा के सात बच्चे थे। मेरे पिता सबसे आखिरी थे। मेरे पिता के पैदा होने के बाद पांचवें महीने में मेरी दादी राजमंड्री में पुष्कर स्नान करने गयीं और वहां से आने के बाद मलेरिया से उनकी मृत्यु हो गयी। तब मेरे दादा इस क्षेत्र से दूर मेरे पिता को ले गए और, जो पश्चिम बंगाल के खरगपुर के करीब ‘बेल्डा’ नामक गाँव में बस गए और वहाँ व्यापार करने लगे।

मेरे पिता का बचपन वहीं बीता। छह साल की उम्र में, फिर से ‘तुनी’ आकर दसवीं कक्षा तक पढ़े। वह कभी-कभी अपने दादा के पास जाते थे। “तुनी” में मेरे पिता की नानी और परदादी बच्चों की देखभाल करती थीं। मेरे पिता ने अपनी पढ़ाई पूरी की, शादी की और वहीं ‘बेल्डा’ में व्यापार करते,

वही बस गए।

मेरे पिता के कम्युनिस्ट विचार थे। वे कभी मंदिर नहीं जाते या पूजा नहीं करते। और जब माँ की बात आती तो वह कट्टरवादी परिवार से थी। दादी रोज गीले कपड़े में नहा-धोकर खाना बनातीं, किसी को छूने नहीं देती। जब बाहरी लोग आते तो पानी छिड़कते थे। ऐसे परिवार से आए हुए माँ को पिताजी ने न पूजा करने देते थे और कहते थे की जो मंदिर में होते हैं वह सभी अनाचार हैं और गीले कपड़े से खाना बनाने को मना करते थे। हर दिन नहा के सूखे कपड़े से खाना बनाने को कहते थे।

मैं ऐसे विचार वाले माता-पिता की तीसरी संतान के रूप में पैदा हुयी। मेरे दो बड़े भाई हैं, बड़े भाई वीरभद्र राव, छोटे भाई वेंकटेश्वर राव और मेरे बाद छोटे भाई गांधी। दोनों बड़े भाई दादा-दादी के यहां पैदा हुए, मैं तुनी में और छोटा भाई 'बेल्डा' में पैदा हुआ। मेरा जन्म तुनी में हुआ था लेकिन तीसरे महीने मैं मेरे पिता बेल्डा ले गए।

तब से चौथे वर्ष तक मैं अपने पिता और माता के साथ रही और फिर विजयनगरम चली गयी। मेरे पिता के बड़े भाई वीरभद्रम "तुनी" में रहते थे और उनके दूसरे भाई विजयनगरम में रहते थे।

बचपन में अपने पिता और मां के प्यार के साथ बड़ी हुई, मैं बहुत ही आश्चर्यजनक रूप से बड़ी हुई। पापा को बेटियां बहुत पसंद थी। इसलिए बड़े भाइयों से ज्यादा मुझे अपने पास लेते थे। जो कुछ बाहर से लाया जाता था वह पहले मुझे दिया जाता था। कुछ दिनों बाद बड़े भाइयों को तेलुगु पढ़ने के लिए 'तुनी' को भेजा गया। लेकिन मुझे वे पास रखना चाहते थे।

जब माँ, पापा, भाई और मैं सो रहे थे, एक देर रात पापा ने मुझे और माँ, भाई को उठया और बाहर ले गए। बाहर आने के थोड़ी देर में हमारा घर पूरी तरह से जल गया। यह मेरी पहली दुर्घटना थी जहां से मैं बाहर निकल चुकी थी।

शिक्षा

उसके बाद, मेरे पिता हमारे साथ लिए खरगपुर गए। कपूर और बेला का कारोबार है। मेरे पिता सुबह जल्दी चले जाते थे और रात को वापस आते थे। इसलिए वे हमारी पढ़ाई पर ध्यान नहीं दे सके। वहां स्कूल दूर थे। पूरे खरगपुर में रेलकर्मियों थे। तब मेरे चाचा और पिता ने मुझे आंध्र प्रदेश जाने के लिए कहा। उन्होंने कहा, 'अगर हम उसे बंगाली सिखाते हैं, तो उसके बच्चे शिक्षित नहीं होंगे। हम वैसे भी तेलुगु लोगों से शादी करेंगे, है ना? चलो तेलुगु सिखाते हैं।'।

तब पिता ने केवल एक शर्त के साथ आंध्र प्रदेश को भेजा। 'मेरी बेटी को नृत्य और संगीत सीखना चाहिए' उन्होंने कहा। बड़े चाचा ने उस पर सहमति व्यक्त की और कहा कि 'विजयनगर में एक नृत्य विद्यालय है' और मुझे विजयनगर ले आए। लेकिन उनके बेटी को डांस नहीं आता था इसलिए मेरा भी छुड़ा दिया। मैंने कक्षा 5 तक विजयनगरम में पढ़ाई की। मैंने मेरे दूसरे घर पर रहकर प्रारम्भिक स्कूल शिक्षा पूरी की।

जब मैं छठी कक्षा में आयी, तो मेरे बड़े चाचा मुझे संगीत सीखाने के लिए 'तुनी' ले आये।

बड़े चाचा बहुत गुस्सेवाले थे, घर में उनका वचन ही वेद था। उनका मतलब यह है कि घर में सभी को सहमत होना चाहिए। वे ऐसे शासक हुआ करते थे। "तुनी" आते ही संगीत शुरू हो गया। यहां पर भले ही उनकी लड़की को संगीत की समझ नहीं थी, लेकिन इधर भी उनकी बेटी को संगीत नहीं समझ में आये तो मेरा भी छुड़ाया गया। लेकिन बाद में जब बड़ी बहन के रिश्ते बने तो देवर के प्रोत्साहन से उन्होंने वीणा सीखी और रेडियो पर कार्यक्रम भी किए। सभी को निःशुल्क संगीत सिखाते थे। अभी भी पढ़ाते हैं।

संगीत के प्रति मेरे पिता के जुनून ने मुझे प्रेरित किया है। यहां एस.एस.एल.सी. मैंने तुनी में जिला परिषद हाई स्कूल में पढ़ाई की। हर कक्षा में अच्छे अंकों से उत्तीर्ण होने के कारण मुझे ७वीं कक्षा में डबल टाइफाइड हो गया और दो महीने तक बिस्तर पर पड़ी रही। चेहरे की बायीं आंख प्रभावित थी, मैंने इसकी वजह से एक साल के लिए पढ़ाई बंद कर दी। कहा जाता है कि अगर आप इसे पढ़ेंगे तो आपकी आंखें चली जाएंगी। फिर मेरे पिता ने मुझे कलकत्ता में ले जाकर इलाज कराया। बाद में मुझे 'तुनी' न भेजकर अपने पास ही रखने के लिए बंगाली सिखाया गया।

लेकिन एक साल तक मेरे पिता के साथ रहने के बाद, बड़े चाचा फिर से आए और मेरे पिता से वादा करके मुझे वापस आंध्र प्रदेश ले गए कि 'इस बार मैं उसकी अच्छी देखभाल करूंगा'। इसलिए मैं दूसरी दुर्घटना से बाहर निकली और आंध्र प्रदेश में अपनी पढ़ाई जारी रखी। जब मैं एस.एस.एल.सी. में थी, तब मैंने वार्षिक परीक्षा के विज्ञान के पेपर की पसंद को छोड़े बिना सभी प्रश्नों के उत्तर लिखे। उस पर, हमारे विज्ञान गुरु ने कहा, तुम बहुत चतुर हो। क्या तुम चाहती हो कि मैं बिना देखे आपको और अंक दूं? उन्होंने मुझे बहुत डांटा। सबके सामने मेरा अपमान करने की वजह से मैं उनको गुस्से से देखती थी। मैं उनकी तरफ न देखती थी न ही विश करती थी। मैं गुरु का अर्थ न जाने बिना गर्व से उनकी ओर देखती थी।

वर्ष 1969 में, एस.एस.एल.सी. पढ़ाई के दौरान गांधी जी के 100 साल के उत्सव पूरे भारत में मनाए गए। जैसा कि सभी स्कूलों में होता है, हमारे स्कूल में भी भाषण और वाद-विवाद प्रतियोगिता आयोजित करने की सूचना दी गई। फिर प्रधानाध्यापक ने हमारे विज्ञान गुरु से प्रतिदिन सभा में गांधी जी के बारे में बोलने को कहा।

सबसे पहले हमारे साइंस मास्टर ने उस दिन बिना मुझे बताए सभा में मेरे नाम की घोषणा कर दी। मैंने सोचा कि 'गांधी जी के बारे में क्या बोलू?'। तुरंत, एक पल में, मुझे प्रेरणा मिली। मुझे सातवीं कक्षा में गांधी जी का पाठ

याद आ गया। इसकी कुछ बातें जो मुझे अच्छी लगीं मैंने तुरंत मंच पर कह दी।

मैंने कहा कि गांधी जी ने कभी झूठ नहीं बोला.... सत्य हरिश्चंद्र उनके आदर्श थे, वे हमेशा शाकाहारी भोजन करते थे... वे बहुत ही गरिमामय और दुबले-पतले थे। एक वैश्य परिवार में जन्मे गांधी जी ने कभी मांस नहीं खाया, लेकिन एक बार एक मित्र ने उन्हें बकरी का मांस खाने के लिए मजबूर किया, जिससे वे पूरी रात पीड़ित रहे। ऐसा लग रहा था कि गांधी जी के पेट में बकरी 'मैं, मैं' रो रही हो। उन्होंने सुबह जल्दी उठकर अपने पिता को सब कुछ बताया और माफीनामा लिखकर टेबल पर रख दिया। अगर उन्होंने ऐसी गलती की भी, तो उस गलती को जानकर उन्होंने अपने पिता से वादा किया कि वह फिर कभी मांस को हाथ नहीं लगाएंगे और वह उस वादे पर कायम रहें।

गांधी जी के विदेश जाने पर उनकी माँ ने उनसे कहा: 'आप भारत में पैदा हुए हैं, जहाँ एक विदेशी महिला में अपनी माँ और बहन को देखना है। विदेश जाकर शराब नहीं पीना, मांस नहीं खाना, और परायी स्त्री से परिचय नहीं बनाने का वचन देते हो तो तुम्हें विदेश जाने की अनुमति दूँगी'- तब गांधी जी ने अपनी माँ को वचन देकर विदेश गए।

मैं मंच पर ये तीन बातें कह रही थी, मेरे प्रधानाध्यापक ने मुझे हर दिन गांधी जी के बारे में कुछ बताने के लिए कहा और मुझे पढ़ने के लिए एक किताब दी। तब से मैं गांधी जी की प्रशंसक हो गयी। गांधी जी ने अपनी पुस्तक में लिखा है 'मुझे जो भी समस्या है, मैं भगवद गीता को खोलता हूँ, मुझे इसका उत्तर मिल जाता है।'।

लेकिन अगर मेरे विज्ञान गुरु ने उस दिन सभा में मेरे नाम की घोषणा नहीं की होती, तो मुझे मंच के डर से कभी छुटकारा नहीं मिलता। उनकी वजह से मुझे दस लोगों के सामने बोलने की हिम्मत मिली। जब मैं पत्नी जी से मिली तो मुझे पता था कि मैं बिना किसी डर के बोल सकती हूँ... 'जो होता है हमारे

अच्छे के लिए होता है'। यह जानने के बाद हमें यह समझ आ गई है कि सब कुछ हमारे अच्छे के लिए ही होगा।

मैं कॉलेज में पढ़ने के लिए फिर से विजयनगरम आ गयी। गणित मेरा पसंदीदा विषय था। लेकिन मेरे पिता ने मुझे डॉक्टर बनाने के लिए Bi.P.C. जाइन करवाया। मेरे पिता के लिए मुझे वही लेना पड़ा। वैसे भी मैं पास हो जाऊँगी ऐसे सोच के मेरे पिता ने मुझे बनारस में पढ़ाने के लिए दोस्तों के द्वारा सीट भी रिज़र्व करवाई।

लेकिन कहा जाता है कि 'अगर हम कुछ सोचते हैं तो भगवान कुछ और सोचेंगे। शायद मुझे इस तरह आध्यात्मिकता में प्रवेश करना था, तो इसी की वजह से मेरी परीक्षा के समय मेरे बड़े भाई और भाभी ने नींद की गोलियां खाकर आत्महत्या करने की कोशिश की। तब मैं और मेरा छोटा भाई घर पर थे। उस घटना के बार-बार याद दिलाने के कारण, उसने परीक्षा ठीक से नहीं लिखी। वह P.U.C. में फेल हो गया। फिर मेरे बड़े चाचा ने मेरी शादी करने के लिए मुझे 'तुनी' ले आये।



मेरे माता-पिता श्री गुंडा सत्यनारायणमूर्ति और श्रीमती रत्नावती

बचपन

पूरे बचपन में एक संयुक्त परिवार में होने के कारण, बड़े चाचा के बच्चे और मैं अपने भाइयों और बहनों की तरह मिलते थे, और बहुत सारे बच्चों के खेल खेलने के साथ हमेशा बहुत शोर होता था।

उनका सारा बचपन खेलों के साथ बीतता था। हर त्योहार पर काफी भीड़ रहती थी। पहले दिन लौकी बनाते, रात भर खेलते और डंडे झुलाते, सुबह-सुबह नदी के पास जाकर सितारों को देखने जाते और उस दिन पूजा करते। बड़े-बुजुर्ग हमें विश्वास दिलाते थे कि ऐसा करने से हमें अच्छा पति मिलेगा।

जब विनायक चतुर्थी आती, तो बहुत सारे फूल और फल एकत्र किए जाते और उनकी पूजा की जाती ; जब दशहरा आता था तो स्कूल के बच्चे और शिक्षक एक साथ जाते थे और, गाने गाकर गुड़ लेके आते थे। संक्रान्ति के महीने में घर के सामने बड़े-बड़े रंगोली डालते थे और पड़ोसियों से प्रतियोगिता करते थे।

जब उगादी का त्योहार आता है, तो गाँव के लोग एक महीने पहले सुबह-सुबह नुकालम्मा अम्मवारि के मंदिर जाकर रंगोली डालते थे। बड़े-बुजुर्गों के कहने पर हम महीने में कम से कम तीन दिन ऐसा करते थे। तब हम जो कर रहे हैं उसका अर्थ पता नहीं चलता था। लेकिन बड़े-बुजुर्ग यह कहकर हमारे लिए करते थे कि यह तो रिवाज है। हमारे लिए भी सब कुछ मजेदार था। नाग पंचमी जब आती तो गाड़ी में बैठ कर दूर खेतों में जाकर टीले में दूध डालते थे। यह सब बड़ों ने किया और हमारे द्वारा किया गया। हम ईश्वर का अर्थ नहीं जानते थे। पूजा का अर्थ नहीं पता था। 'वह करना ही है' ऐसे बोलते तो हम कर देते थे। बड़े-बूढ़े कहा करते थे कि ऐसा करने से सभी देवता हमारी ओर ठंडी दृष्टि से देखेंगे। इसलिए वे पूजा करते थे। लेकिन मैं बड़ों के दिए गए

जवाबों से संतुष्ट नहीं थी। मुझे लगता था ‘फिर सभी उपासकों को खुश होना चाहिए, है ना? और वे क्यों नहीं है?’ यदि आप इसके बारे में सोचते हैं, तो आपको इसका उत्तर नहीं मिलेगा। लेकिन त्योहार के दिन मैं मंदिर जाती, नारियल और केले को देती थी, डिब्बे में पैसे डालती थी और मन्नत मांगती थी।

पत्नी जी से मिलने के बाद पता चला कि “सिर्फ चाहने से कुछ नहीं आता है, केवल कड़ी मेहनत के साथ आता है”।

मुझे बचपन से ही लोगों को दुख देना अच्छा नहीं लगता था। मैं बचपन से ही अपनी दादी के हर काम में हाथ बंटाती थी। ऐसा करने से बेहतर ढंग से समझ गयी कि काम को जल्दी कैसे करना है। बचपन में इतने छोटे-छोटे कामों में हाथ बँटाती अब मैं कोई भी काम करने से नहीं डरती। एक बच्चे के रूप में, मैं हाई स्कूल में थ्रोबॉल खेलती थी और हमेशा घर पर अपने बड़े भाइयों के साथ कैरम खेलती थी।

मुझे बचपन से ही ‘वेंकटेश्वर स्वामी’ से बहुत लगाव है। जब मैं एक बच्ची थी, चाहे मुझे खुशी हो रही हो या दुख, मैं भगवान वेंकटेश्वर की फोटो के पास जाती थी और बात करती थी। ‘माँ के पास नहीं है!’ तो मुझे लगता था कि मैं भगवान को वह सब कुछ बता रहा हूँ जो मुझे अपनी माँ से कहना था। जब मैं एक बच्ची थी, तो मुझे गुस्सा करने वाले लोग बिल्कुल पसंद नहीं थे। बड़े चाचे को बहुत गुस्सा था। जो कोई भी घर में कोई छोटी सी गलती करने पर बुरी तरह से डांटते थे। सब डरते थे। ‘एक छोटी सी गलती के लिए ऐसा डांटना है क्या’ ऐसे मैं पूछती थी। घर में सब को डांटते थे लेकिन मुझे कुछ नहीं कहते थे। क्यों की बाकी सब लोगों से मैं अच्छी तरह पढ़ती थी, इसलिए मुझे प्यार से देखते थे।

विवाह

मेरा विवाह राघवराव जी से 14 फरवरी, 1972 को हुआ। राघवराव जी की एक बड़ी बहन, दो छोटी बहनें और एक छोटा भाई है। राघवराव जी को अपने पिता और माता से बहुत लगाव है। इनके पहले एक बेटे का मृत्यु हुआ था इसलिए इनको बहुत प्यार से पाला।

राघवराव जी में बचपन से ही काफी लगन थी। उनके पिता और दादा का प्रभाव उन पर बहुत अधिक था। अपने दादा की तरह परोपकार, व्यापार कौशल और पिता की तरह ईमानदारी हैं। दादा कृष्णमूर्ति एक स्वतंत्रता सेनानी थे और राघवराव जी के पिता नगरपालिका अध्यक्ष और चैंबर ऑफ कॉमर्स के अध्यक्ष थे। राघवराव जी बचपन से ही घर में राजनीतिक मामलों में व्यस्त रहे अपने दादा और पिता से सीखा। उन्होंने चैंबर के अध्यक्ष और राइस मिलर्स [rice millers] और सचिव के रूप में भी कई पदों पर कार्य किया। उन्हें 'सेवा' करना बहुत पसंद है।

साथ ही घर पर निःशुल्क होम्योपैथी क्लिनिक स्थापित किया गया। वह किसी की मदद करना पसंद करते हैं। उनके परिवार में हर कोई लोगों की मदद करना चाहता है।

उनकी बड़ी बहन 'नूलि लक्ष्मी' को भी महिला अध्यक्ष, जिला अध्यक्ष, साथ ही भीमावरम अध्यक्ष बनाया गया और कई सेवा कार्यक्रम किए और मुफ्त में संगीत सिखाया। उनके छोटे भाई ने डॉक्टर बनकर कई लोगों की सेवा की। राघवराव जी की छोटी बहनें दोनों ही पढ़ी-लिखी थीं। मेरी मौसी का पूरा परिवार भी पढ़ा-लिखा था। वे एक आध्यात्मिक परिवार हैं।

शादी के तीसरे दिन जब मैंने अपने ससुराल में कदम रखा, तो मुझे लगा, 'इस दिन से, मुझे अपने जीवन के अंत तक इसी घर में रहना चाहिए'। मुझे नहीं पता था कि तब मुझे ऐसा क्यों लगा था, लेकिन अब मैं जो जानती

हूँ वह पत्नी जी की शिक्षाओं के कारण है: जिस घर में सभी धर्मबद्ध हैं, बिना अपेक्षा से सेवा करते हैं, वहां सकारात्मक स्पंदन होते हैं। इसलिए मुझे ऐसा लगा। मैं ऐसा सोचती हूँ कि हमारा घर इतना अच्छा है कि पत्नी जी जैसे महापुरुष ने हमारे घर में प्रवेश किया।

कोई योगी घर में प्रवेश किया है तो उस घर के परिवारवालों बहुत पुण्यात्मा होने से ही संभव है। यह बात मुझे पत्नी जी से मिलने के बाद पता चली।

इस घर में कदम रखते ही मुझे राघवराव जी के दादाजी की वो बातें आज भी याद हैं, 'माँ! तुम इस घर की सबसे बड़ी बहू हो, इस घर की मर्यादा तुम्हारे हाथ में है।' ऐसे कहा। तब मैंने वादा किया था कि 'मैं इस परिवार का नाम कभी खराब नहीं करूंगी'। तब से, मैं चाहे कुछ भी कर लूँ, मुझे उनकी बातें हमेशा याद रहती हैं।

संसार

विवाह के बाद जब मैं ससुराल आई तो मैंने सेवा करना सीखा। मेरी सास के माध्यम से घर के कामवाले लोगों की देखभाल करना, उनको खाना खिलाना, ऐसा सब सीखा। घर में चार भैंसें थीं। सबको छाछ बांटते थे। राघवराव जी की दादी हर शुक्रवार को घर में भजन करती थीं। मैंने उन्हें देखकर ही यह सब सीखा।

जिस साल हमारा विवाह हुआ उस साल हमारी एक बच्ची हुई। मुझे लड़कियां पसंद हैं, और मेरे पति को लड़के पसंद हैं। वे तीन बेटे चाहते थे। मानो भगवान ने मेरी इच्छा पूरी कर दी हो, पहली लड़की का जन्म हुआ। नाम 'श्यामला' है। फिर दो बच्चे हैं। बड़ा बच्चा 'नरसिम्हाराव' है और छोटा बच्चा 'किरण' है।

राघवराव जी के लिए तीनों बच्चों का मतलब ढेर सारा स्नेह और प्यार है। लेकिन वह ऐसे दीखते नहीं है। किसी भी विषय को व्यक्त नहीं करते हैं।

लेकिन वे उनकी पसंद की हर चीज खरीदते हैं। तीनों बच्चे पढ़े-लिखे हैं। श्री राघव राव व्यवसाय में कितने भी व्यस्त क्यों न हों, वे अपने बच्चों की शिक्षा पर बहुत ध्यान देते थे। साथ ही बिजनेस भी नंबर-1 बनना चाहते थे। उनकी मेहनत और लगन से छह फैक्ट्रियां बनीं। हमारे बिजनेस के अलावा उनकी बड़ी बहन और छोटी बहनों के व्यापार भी देखते थे। हर कोई हमेशा बेहतर होना चाहता था। सबके लिए अपनी खुशियों की कुर्बानी देते थे। मुझे कई तरह से प्रोत्साहित किया गया। वे कभी किसी चीज के लिए प्रतिबद्ध नहीं होते। साथ ही हमारे बच्चों की शादी के विषय में भी सब कुछ उनका ही फैसला है। और सब ठीक हैं।

मैंने पत्नी जी से पहली बार मिले बिना उनके बारें में सुना। दूसरी

डिलीवरी के दौरान हमारी बेटी को अस्पताल में भर्ती कराया गया था। ऑपरेशन का समय २ बजे था। तब हमारी नौकरानी “लीला” पत्नी जी के बारें में बता रही थी। उसने कहा, ‘मैं तब गई थी जब पत्नी जी भीमावरम त्यागराज के भवन में कक्षा देने आए थे। उन्होंने ध्यान के बारें में बहुत अच्छी तरह से बात की थी’ और हमारी लड़की से कहा, ‘अपनी आँखें बंद करो और ‘ध्यान’ करो। कोई आंदोलन और चिंता नहीं होगी। ‘हमारी लड़की ने ऐसा ही किया। हमारी पोती ‘स्नेहिता’ बहुत भाग्यवान समझी जाती थी।

हमारे बच्ची का ध्यान करने के बाद ऑपरेशन किया गया। हमारी बच्ची लड़की चाहती थी। ऐसा ही हुआ। क्योंकि पहले बच्चा पैदा हुआ। अगले दिन हमारी ननद ने पत्नी जी की ‘ध्यान से लाभ’ सी डी सुनी, दूसरे दिन वह सी.डी. मैंने भी सुनी। पत्नी सर को देखे बिना “ध्यान” के बारें में जानना और सी डी को श्रवण करना, ये सब हुआ। इस तरह मेरा ध्यान से परिचय हुआ। लेकिन तब मुझे ध्यान में कोई दिलचस्पी नहीं थी। इसलिए ध्यान नहीं करती थी।



मेरे ससुर और सास
कीर्ति सेशुलु तटवर्ति नरसिम्हा राव, श्रीमती श्यामला

दिव्य मंदिर में ध्यान मंदिर

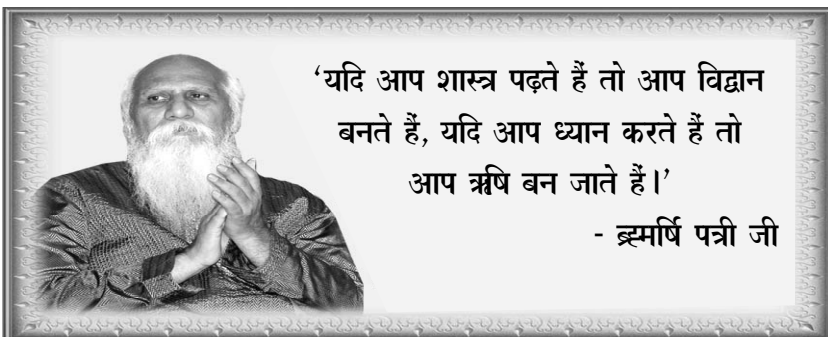
राघव राव वेंकटेश्वर स्वामी के भक्त हैं। उन्होंने भीमावरम में भगवान वेंकटेश्वर के लिए एक मंदिर बनवाया। अपने पिता की मृत्यु के बाद, उन्होंने सोचा कि उनके नाम पर कुछ होना चाहिए, और यह सभी के लिए उपयोगी होना चाहिए, इसलिए उन्होंने हमारी राइस मिल के परिसर में एक मंदिर बनाया। उनका आशय है कि सभी राइस मिल कर्मों प्रतिदिन दर्शन करें।

हम हर साल तिस्त्रपति जाते थे। हमने वहां वेंकटेश्वर स्वामी ध्यान मंदिर देखा और बैंगलोर में अंजनेयस्वामी ध्यान मंदिर भी देखा। फिर उन्होंने सोचा कि अच्छा होगा अगर हम भीमावरम में एक ध्यान कक्ष भी बना लें।

मुझे तब तक नहीं पता था कि 'ध्यान' क्या है। लेकिन मेरे पति को ध्यान सीखने की आकांक्षा थी। मेरी कोई महत्वाकांक्षा नहीं थी। मेरे पति चाहे कुछ भी काम करे तो मैं पहले 'नहीं' बोलती, लेकिन जब वह करते हैं तो मैं कुछ भी नहीं बोलूंगी। क्योंकि वह अच्छा काम करेंगे जिससे सभी को फायदा होगा।

वह एक 'ध्यान मंदिर' बनाना चाहते थे और सभी को ध्यान सिखाना चाहते थे। कुछ योग शिक्षकों को ध्यान सिखाने के लिए आमंत्रित किया गया था। ध्यान क्या है? कैसे करें ध्यान? ध्यान क्यों करते हैं? जब आप ध्यान करते हैं तो क्या होता है? क्या आता है? ध्यान किस उम्र में करना चाहिए? ऐसे आंख बंद करके बैठने से क्या फायदा? उन सवालों के सही जवाब नहीं मिले और समझ में नहीं आया। हम कितने साल करने पर भी कोई बदलाव नहीं आया है। बीच में कुछ दिनों के लिए साधना भी बंद हो जाती थी।

भीमावरम में हमारे ध्यान कक्ष में पत्री जी के आने तक वहां उचित ध्यान नहीं हुआ। पत्री जी की 11 नवंबर, 2002 को हमारे राइस मिल परिसर में पहली बार ध्यान की क्लास हुई। उस दिन करीब 1000 लोग ध्यान सीखने आए थे। उस दिन पत्री जी ने ध्यान से क्या फायदे होते हैं, कैसे अनुभव आएंगे ये सब बहुत अच्छी तरह से व्याख्यान किये। सब बहुत अच्छे से समझाया। हमें दो घंटे की क्लास और आधे घंटे का मेडिटेशन दिया गया। उस दिन पत्री मैडम भी आईं। उनके अनुभव भी बहुत कुछ कहते हैं। उनके दादा और दामाद श्रीनिवास रेड्डी भी आए थे। पत्री जी वहां दो दिनों तक रहे और ध्यान की कक्षाओं का संचालन किया। तभी से हमारे ध्यान कक्ष में ध्यान हमेशा चलता रहा।



पिरामिडों की विशिष्टता

जब सर पहली बार ध्यान मंदिर आए, तो पूजारी ने पत्नी जी से हमारे मंदिर में एक प्रश्न पूछा, 'श्री चक्र' और 'पिरामिड' में क्या अंतर है? वह तब पत्नी जी ने कहा कि यदि 90 हजार श्रीचक्रों को जोड़ दिया जाए तो यह एक पिरामिड बन जाएगा। अर्थात्, 'यदि 90 हजार श्रीचक्र एक स्थान पर हों, तो पिरामिड में उतनी ही ऊर्जा होगी'। इससे सभी समझ जाते हैं कि पिरामिड में कितनी ताकत है।

पत्नी जी जाने के तुरंत ही मेरे पति ने हमारे घर के ऊपर पिरामिड का निर्माण शुरू किया। मैं बहुत खुश थी। क्योंकि तब तक वे यही सोचते थे कि 'श्रीचक्र ही बड़ी शक्ति से आते हैं।' और पिरामिड उससे कई गुना अधिक शक्तिशाली है! अगर ऐसा पिरामिड बनाया जाए और हर कोई इसका इस्तेमाल कर सके तो हर कोई शक्तिशाली हो जाएगा। पत्नी जी से मिलने के बाद मुझे कई बातें पता चलीं।

एक बार जब हम कर्नूल गए और पत्नी जी के साथ बैठे तो उन्होंने हमें मंदिरों और ध्यान कक्षों का मतलब बताया। उनके कहने का आशय क्या है? 'सभी मंदिर हरिद्वार हैं, सभी ध्यान हॉल हरिधाम हैं,' उन्होंने कहा। यदि आप 'भगवान' सोचकर दरवाजे पर जाते हैं, तो आपको 'हरि' नहीं मिलेगा। यदि आप 'हरि' चाहते हैं, तो आपको धाम में प्रवेश करना होगा। 'हरि' द्वार पर नहीं, धाम में रहते हैं। 'हरि' बनने की कोशिश के बाद, वे अंततः थक जाते हैं और ध्यान करने की इच्छा के साथ ध्यान कक्ष में आते हैं। फिर वह 'हरि' को प्राप्त करते हैं। 'श्री हरि' का अर्थ है 'आत्मा'? तो अंत में 'हरि के धाम में हरि को मौजूद जानकर, वे स्वयं ध्यान कक्ष में आते हैं।' ध्यान कक्षों के बारे में बात करते हुए उन्होंने कहा, 'अगर उन्हें पिरामिड के रूप में बनाया जाए, तो उनका ध्यान तीन गुना बढ़ जाएगा। अच्छे अनुभव आएंगे।'।

पहले के जमाने में लोग तकनीक को जाने बिना मेडिटेशन हॉल बनाते थे, लेकिन पत्नी जी के कारण जब सबको पिरामिड के बारे में पता चला तो हर मंदिर, स्कूल और हर घर में पिरामिड बनाए जा रहे हैं। आजकल हर कोई समझता है कि 'पिरामिड ध्यान के लिए है'। इसलिए हर कोई पिरामिड बना रहा है और उन्हें हर किसी के लिए उपयोगी बना रहा है, सिर्फ उनके लिए नहीं जो भगवान तक पहुंचने की कोशिश कर रहे हैं।

मेरा ध्यान प्रवेश

भले ही मैं ध्यान के बारे में जानती थी, मैंने ध्यान नहीं किया था। हमारे लोगों में बहुत गुस्सा है, असल में वो उस गुस्से से डरते हैं.. साथ ही वो पत्नी जी के गुस्से से भी डरते थे और सोचते थे ‘मुझे ध्यान नहीं करना है’। लेकिन जब मैंने ध्यान करना शुरू किया तो मुझे एहसास हुआ, ‘पत्नी जी का गुस्सा हम पर नहीं, हमारी अज्ञानता पर है’।

मेरे पति अच्छे से ध्यान करते थे। तीन घंटे, चार घंटे। मैंने कहा, ‘आप इस तरह अपनी आँखें बंद करके कैसे बैठ सकते हैं?’ मैं केवल जब पत्नी जी आते थे तब करती थी उनकी पहली कक्षा नवंबर में हुई थी, और हमने दिसंबर में तुरंत अपने घर पर पिरामिड बनाना शुरू कर दिया था। फिर पत्नी जी ने आकर जनवरी में इसे खोला। मैंने उस दिन फिर से ध्यान किया।

पत्नी जी ने फरवरी में भीमावरम में तीन दिवसीय ध्यान यज्ञ करने को कहा। हम बहुत खुशी से राजी हो गए। यज्ञ 13, 14 और 15 फरवरी को हुआ था। उन दिनों पश्चिम गोदावरी जिले में कोई भी ध्यान का अर्थ नहीं जानता था। इस वजह से तिरुपति, गुड़ीवाड़ा, विजयवाड़ा और बेल्लारी के उस्तादों ने आकर ध्यान का प्रचार किया। उन्होंने कई गाँवों का दौरा किया, पर्व बांटे और सभी को ध्यान यज्ञ की विशेषता और पत्नी जी की विशेषता बताकर यज्ञ में आने का निमंत्रण दिया।

विज्ञापित सभी स्वामी एक माह के लिए हमारे घर में रहते। उन सभी ने मुझे ध्यान करने के लिए कहा। मैं उनसे पूछती थी कि उन्हें ध्यान क्यों करना चाहिए और वे कहते थे ‘ध्यानं सर्वरोगनिवारिणी’, ‘ध्यानं सर्व भोगकारिणी’, ‘ध्यानं सर्व ज्ञानप्रसादिनी’। तो मुझे कोई रोग तो नहीं है? मैं हठपूर्वक पूछती थी कि मुझे ध्यान क्यों करना चाहिए। लेकिन जब मैं ध्यान में आयी, तो मुझे यह एहसास हुआ कि ‘ध्यान केवल वर्तमान के रोगों से छुटकारा पाने के बारे में नहीं

है, बल्कि भविष्य की बीमारियों को रोकने के बारे में भी है।’

ध्यान ‘सकलभोगकारिणी’ का अर्थ, मैं सोचती थी, मेरे पास बहुत पैसे हैं न अब मुझे ध्यान क्यों चाहिए। ‘भोग’ का मतलब केवल पैसा ही समझती थी। लेकिन ‘भोग’ का अर्थ है ‘कही भी हो, या किसी परिस्थिति में भी खुशी से रहना ही भोग है’। यह ध्यान करने के बाद ही पता चला।

यदि आप कहते हैं, ‘ध्यान ज्ञान का उपहार है’, तो मुझे बहुत ज्ञान प्राप्त होता, लेकिन जब मैं पत्नी जी से मिली, तो मुझे एहसास हुआ कि ‘जितना जानती हूँ वह एक बूँद जैसी है, जितना जानना है वह सागर जैसे है।’ ध्यान में प्रवेश करने के पहले ऐसा सोचती थी कि मुझे सब पता है। लेकिन ध्यान में प्रवेश करने के बाद पता चला कि जानने वाला ज्ञान अनंत है। अज्ञानवश उनके कहने पर भी मैंने ध्यान नहीं किया।

फरवरी में भीमावरम में ध्यानयज्ञ हुआ था। दूसरे दिन हमारी शादी का दिन था और पता नहीं कैसे पत्नी जी को पता चला, शिवप्रसाद एक केक लाए और मंच पर हमारे साथ मनाया। सर ने मुझे मंच पर बुलाया और मुझे माइक दिया और कहा ‘बोलो मैडम’। लेकिन मुझे नहीं पता कि क्या कहूँ? ध्यान या पत्नी जी के बारे में कुछ नहीं जानती थीं। लेकिन मुझे वचन से झूठ बोलने की आदत नहीं रही। झूठे बहुत लोग परेशान होते हैं। इसलिए मैं झूठ नहीं बोलना चाहती थी, मैंने कहा, ‘मुझे ध्यान पसंद नहीं है, पत्नी जी! मुझे कोई दिलचस्पी नहीं है, लेकिन मुझे हमारे लोग बहुत पसंद हैं, इसलिए मैं ये सब कर रही हूँ।’

क्योंकि मंच पर सच बोलने पर उनकी पिटाई की गई। मुझे उस दिन पत्नी जी की विशेषता का पता नहीं था। हम यह भी नहीं जानते कि वह हमारे दिमाग को पढ़ सकते हैं। पत्नी जी ने हमारे द्वारा केक काटा। पत्नी जी जानते हैं कि इतनी छोटी-छोटी इच्छाएं सभी की होती हैं, इसलिए वे सभी को भावनात्मक खुशी देते थे।

यज्ञ समाप्त हो गया। सब चले गए। रोजमर्रा की जिंदगी में वापस आने के बाद मैं अपने बच्चों, बहुओं और नाती-पोतों के साथ समय बिता रही हूँ। लेकिन अगर कोई ध्यान के लिए जन्म लेता है और ध्यान न करते हुए दिन बिताता है और जीवन को बर्बाद कर देता है, तो प्रकृति कैसे समृद्ध हो सकती है? यह किसी तरह हमें चेतावनी देती है और हमें याद दिलाती है कि हमें क्या करना है। प्रकृति ने मुझे भी यही याद दिलाया।

मैं बहुत स्वस्थ थी और यज्ञ के पंद्रह दिनों के भीतर बीमार पड़ गयी। जोड़ों में अत्यधिक दर्द था। शरीर के हर जोड़ में सूजन और दर्द था। बुखार आने के कारण वह बिस्तर से उठकर एक कदम भी नहीं चल पा रही थी। डॉक्टरों ने परीक्षा किया और कहा, 'मुझे गठिया है, यह ठीक नहीं होगा, जीवन भर दवाई लेनी है।' फिर उन्होंने कहा, 'ध्यान से कोई भी बीमारी कम हो सकती है!'

और आप ध्यान कर सकती हो ना। आप ध्यान नहीं कर सकते! उन्होंने मुझे बहुत जोर से मनाया। न चाहते हुए भी मैंने उनके लिए ध्यान किया। ध्यान शुरू करने से पहले मैंने एक निर्णय लिया, 'ठीक हुआ तो सब को बताऊंगी कि यह अच्छा है। नहीं ठीक हुआ तो फिर कभी भी ध्यान नहीं करूंगी और किसी को भी इसके बारे में नहीं बताऊंगी।' मैंने फैसला किया और ध्यान करना शुरू कर दिया।

ध्यान करने के पंद्रह दिनों के भीतर मैं एक पानी का गिलास पकड़ सकती थी! मैं एक महीने में चल सकी। मैं दो महीने में एक सामान्य व्यक्ति बन गयी! तब मैं इस निष्कर्ष पर पहुंची कि ध्यान बहुत अच्छा है।

मैं दो घंटे सुबह और दो घंटे शाम को ध्यान करती थी। दो महीने मेडिटेशन करने के बाद मेडिटेशन की आदत हो गई और ध्यान नहीं किया तो लगा कि उस दिन कुछ मिस कर रही हूँ। 'ध्यान' करना बड़ा आनंददायी होता है। मैं इस स्थिति में आ गयी कि इस तरह के ध्यान के बिना नहीं रह पाती।

तब मेरा अनुभव कहता है कि 'ध्यान' में जो आनंद है, वह कही भी नहीं है, 'ध्यान' करने से जो सुख मिलता है, वह और कही भी से नहीं मिलता। इसलिए पत्नी जी ने अपने ज्ञान नवरत्न में कहा, 'अनुभव ही ज्ञान है'। 'ध्यान' करने से मुझे जो लाभ हुआ, उसके कारण मुझे एहसास हुआ कि 'इससे बढ़कर कुछ नहीं है'।

लेकिन पत्नी जी ने मुझे कभी ध्यान करने के लिए नहीं कहा। लेकिन उनसे मिलने के बाद मुझे उनकी बात का मतलब समझ में आया। वह किसी व्यक्ति को देखते ही उसे जान लेने की शक्ति रखते थे। इसलिए जब वह मुझे देखते थे तो वह मेरे बारों में जानते हैं। 'वह आने वाले दिनों में ध्यान करना बंद नहीं करेगी, वह हर गांव में लौट आएगी और वह निश्चित रूप से ध्यान करेगी।' क्योंकि वह पहले से जानते थे, एक महान व्यक्ति होने के नाते जो सब कुछ जानते हैं, उन्होंने मुझे कभी भी ध्यान करने के लिए मजबूर नहीं किया। पत्नी जी कभी परेशान नहीं करते, किसी को भी मजबूर नहीं करते थे। हम जो कुछ भी करते हैं वह 'ठीक है' कहते हैं, 'मैं नहीं करूंगा' ऐसे बोलते, तो भी वे कहते हैं "ठीक है।" मैंने उन्हें कई मौकों पर देखा है। मेरा ध्यान जो मैंने इस तरह शुरू किया, दिन-ब-दिन सुधार हुआ जहाँ मैं पूर्णिमा और अमावस्या को सारी रात ध्यान में बैठी रहती हूँ!



**नर से नारायण बनना ही
सबके जीवन का लक्ष्य है।**

- ब्रह्मर्षि पत्नी जी



समाजसेवा

मेरी सारी जिम्मेदारियां खत्म हो गई हैं। हमारे बच्चों की शादी हो गई। तब मेरे माता-पिता मुझे सामुदायिक सेवा में रखने के लिए 'महिला संघ अध्यक्ष' बनाना चाहते थे, और सभी सदस्यों ने मुझे प्रोत्साहित किया, इसलिए मैं अध्यक्ष बन गई। वे समुदाय की ओर से कई कार्यक्रम करते थे। यह सब राघव राव द्वारा प्रोत्साहित किया गया था। जैसा कि मैं सबके लिए करती हूं दिखाई दे रहा है, लेकिन मेरे पीछे मेरे पति ही थे, जिन्होंने सब कुछ किया। अगर मैं 25% काम करती हूं, तो वे 75% काम करते हैं। वे ऐसे कई कार्यक्रम करते हैं।

हमने घर के पास एक निःशुल्क होम्योपैथी क्लिनिक स्थापित किया है। एक डॉक्टर और एक नर्स थी। वे आस-पास के गांवों से आकर दवाइयां लेते थे। रोजाना करीब 100 से 200 मरीज आते थे। राघव राव कितनी भी सेवा कर रहे थे, फिर भी कुछ करने की सोच रहे हैं। ध्यान कक्षाओं का निर्माण, मंदिरों का निर्माण, कल्याण मंडप का निर्माण, अस्पताल का निर्माण।

वे अपने पदों के माध्यम से कई सेवा कार्यक्रम भी करते हैं, मैरिज हॉल और अस्पताल बनाने जैसे ये सभी काम करते हैं।

कुछ दिन पहले मैंने अपने घर पर एक 'महिला प्रशिक्षण संस्थान' स्थापित किया था, जहाँ महिलाओं को विभिन्न शिल्प जैसे सिलाई, पेंटिंग, कढ़ाई, सॉफ्ट टॉय, ग्लास पेंटिंग, पॉट पेंटिंग, दीवार की सजावट मुफ्त में सिखाई जाती थी। उस संस्थान में तीन शिक्षक थे। मैं हाथ की कढ़ाई सिखाती थी। अपनी पढ़ाई में प्रवीणता हासिल करने पर प्रमाणपत्र भी देती थीं। हमारे द्वारा दिए गए प्रमाणपत्रों के कारण उन्हें ऋण और नौकरी भी मिलती थी! कई महिलाएं इन शिल्पों को सीखते थे। और घर के पास रहकर अपनी कमाई, करते थे।

डफ एंड डम के बच्चों ने भी मुझसे सिलाई, पेंटिंग और कढ़ाई सीखी। एक विकलांग बच्चा भी सीखता है। हरिजन बच्चे और मुस्लिम बच्चे भी पढ़े। हमारे संस्थान में ‘कौन सी जाति? कौन सा धर्म?’ हमने बिना पूछे सबको शिक्षा दी है। इसका मतलब है कि पत्री जी के आदर्श हमारे जीवन में बिना जाने ही आ गए हैं कि वे कौन हैं। अगर एक कदम सबको सिखाने का है तो दूसरा कदम बेजुबानों को सिखाने का है। ऐसे लोगों को पढ़ाते हुए यह मुझे बहुत खुश करता है।

हमारे संस्थान में कई बुजुर्ग, कलेक्टर, मंत्री आए। वे क्या कह रहे हैं, ‘सरकारी मदद और धन आ जाएगा यदि आप आवेदन करते हैं, है ना?’

लेकिन राघव राव को उनमें कोई दिलचस्पी नहीं थी। ‘भगवान ने हमें जो कुछ दिया है, हम उसमें से कुछ खर्च कर रहे हैं। यदि हम ऐसा करते हैं, तो हम संतुष्ट होंगे। मेरे पति जो कुछ भी करते हैं वह मुझे पसंद है। मुझे अच्छा लगता है। मैं उन्हें कभी कोई सलाह नहीं देती, क्योंकि शुरू से ही वह सब कुछ मुझसे बेहतर जानते हैं, इसलिए मुझे कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं है। उनका अनुकरण करने से सभी आनंद है। ऐसे शुरू हुई सेवा अभी भी जारी है। फ्री होम्योपैथिक अस्पताल ध्यान में आने के बाद बंद कर दिया गया। लेकिन पत्री जी के संपर्क में आने के बाद मैंने महसूस किया कि सबसे बड़ी सेवा ध्यानप्रचार है। हम समझते हैं.. हम जानते हैं कि आध्यात्मिक सेवाएं भौतिक सेवाओं से बेहतर हैं, ‘मुक्ति कर्म’ ‘पुण्यकर्म’ से बेहतर हैं। कारण यह है कि पुण्य कर्मों के कारण व्यक्ति को आनंदमय जन्म मिलता है। लेकिन हम समझते हैं कि ‘मुक्ति कर्म’ के माध्यम से बिना जन्म के मुक्ति की स्थिति प्राप्त की जा सकती है। तो शरीर को लाभ और आत्मा को लाभ पहुंचाने वाले ‘मुफ्त होमियो क्लिनिक’ को बंद करें।

तीन दिवसीय ‘आत्म जागरूकता प्रशिक्षण शिविर’ शुरू किया गया था। यह शिविर 2004 में शुरू किया गया था और हम इसे हर महीने 1, 2 और 3 तारीख को जारी रख रहे हैं! इस शिविर में हजारों लोगों ने भाग लिया। उस

शिविर में कई लोग मास्टर्स बन गए इस शिविर में आंध्र और तेलंगाना ही नहीं, बल्कि कई राज्यों से भी लोग आकर शिविर में ध्यान सीखें।

जो भी हो, हम समझ गए कि आत्मा की सेवा शरीर की सेवा से बेहतर है, भीमावरम में आयोजित शिविर के अलावा हमने कई गांवों, राज्यों और देशों का दौरा भी किया। उन गांवों में ध्यान और ज्ञान प्रदान किया जाता था।

यदि हम थोड़ा विचार करें तो हम शरीर और आत्मा के बीच के अंतर को समझ सकते हैं। शरीर अनित्य है। यानी यह कुछ समय के लिए होगा। लेकिन 'आत्मा' शाश्वत है और हमेशा मौजूद रहती है। इसलिए, हम समझ सकते हैं कि कैसे आध्यात्मिक सेवाएं शरीर की सेवाओं से बेहतर हैं। एक तरह से यह समझा जा सकता है कि शरीर सेवा और आत्मसेवा में बहुत अंतर है। इसलिए पत्नी जी सभी को स्वयं सेवा करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। इसके अनुसार जो लोग पत्नी जी का अनुसरण करते हैं वे जान सकते हैं कि वे कितने भाग्यशाली हैं।

आध्यात्मिकता

मैं बचपन से ही पूजा करती थी, मंदिरों में जाती थी, स्तोत्र पढ़ती थी, विष्णु सहस्र नाम, ललिता सहस्र नाम, भगवद गीता का पाठ, पुराण श्रवण में जाती थी...। मैंने 10 साल तक भजन भी किए। अम्मावरी गुड़ी में हर शुक्रवार, ललिता परायणम, भगवद गीता परायणम, देवी स्तोत्र... अम्मावरी पर गीत गाते हैं। मंगलवार के दिन, मैं राम मंदिर जाती थी और विष्णु सहस्र नाम परायणम, राम रक्षास्तोत्र और हनुमान चालीसा पढ़ती थी। यदि आप यह सब पाठ करते हैं तो आपको बहुत पुण्य मिलेगा। लेकिन इससे आगे की नहीं सोच रहे हैं।

अतीत में, यदि कोई अधिक ईश्वरीय गतिविधियों में शामिल था, 'हाल ही में वे अधिक आध्यात्मिक हो गए हैं।' लेकिन मुझे तब तक पता नहीं चला जब तक कि पत्नी जी का परिचय नहीं हुआ पत्नी जी से परिचय होने के बाद मैंने जान लिया कि “आध्यात्मिकता का मतलब आत्मा से सम्बंधित है।”

मैंने सीखा कि यह 'आत्मा' से संबंधित है। चूंकि 'आत्मा' का अर्थ परमात्मा है, इसलिए यह समझा जाता है कि 'आत्मा' का संबंध आध्यात्मिक है। इसलिए आत्म-सुधार से संबंधित कार्य करना समझा जाता है। ऐसी कौन सी चीजें हैं जो आपको अच्छा महसूस कराती हैं? पत्नी जी कहा करते थे कि 'किस प्रकार के अभ्यास से आत्म-उन्नति होती है।'

यह जानते हुए कि अध्यात्म 'आत्मा' का अध्ययन है। यदि आप 'आत्मा' के बारे में जानते हैं तो यह सब कुछ जानने जैसा है। यदि आप 'आत्मा' को नहीं जान सकते, तो आप कुछ भी नहीं जानते।

हमारे जानने या प्राप्त करने के लिए बाहर कुछ भी नहीं है; यह महसूस करने के बाद कि जो कुछ भी मौजूद है वह हमारे भीतर है, हमने महसूस

किया कि हमारे भीतर आत्मा को जानने का सबसे अच्छा तरीका ‘श्वास पर ध्यान’ है। क्योंकि.. जो आप में जाता है.. जो निकलता है वो आपकी ‘श्वास’ है, उस पर ध्यान करेंगे तो ही आपको सब कुछ पता चलेगा। जब तक हम ‘आत्मा’ को नहीं जानते तब तक हम शरीर को ही आत्मा समझते हैं। जब हम ‘आत्मा’ के बारे में जानते हैं.. तब हम समझते हैं कि ‘यह मेरा शरीर है, मैं ‘आत्मा’ हूँ’।

ऐसा कि देखिये — ‘मेरे पैर में दर्द है, मेरे दांत में दर्द है, मेरा शरीर काला है, सफेद हैं... मुझे दाने हो गए हैं... मेरी नाक, मेरी आंखें, मेरे कान, मेरा मुंह और मेरे बाल’ ऐसे बोलते रहते हैं। ये सब शरीर के अंग हैं। और अगर ये अंग ‘मैं’ हैं... तो कौन क्या ‘मैं’ है? शरीर और शरीर के अंगों को मेरा कहा जाता है! क्या इसका मतलब यह है कि मैं अलग हूँ? और शरीर के अलावा और क्या है? अगर आप इसके बारे में सोचेंगे, तो आपको पता चलेगा कि ‘मैं’ ‘आत्मा’ है शरीर में। इसका मतलब है कि ‘आत्मा’ मैं हूँ।

तब ‘शरीर’ मेरा जाना जाएगा। यह जानकर हम सनातन ‘आत्मा’ अर्थात् स्वयं के लिए प्रयत्न करते हैं, शरीर के लिए नहीं। क्योंकि यह शरीर इसी जन्म के साथ अर्थात् यहीं समाप्त हो जाता है। और यदि तुम फिर से जन्म लेते हो, तो तुम्हें दूसरा शरीर मिलेगा। और जन्म-जन्मान्तर में न मिटने वाली ‘आत्मा’ के लिए अर्थात् ‘मैं’ के लिए विचार करना चाहिए? या एक नश्वर शरीर के लिए सोचो? अर्थात् मेरे अर्थात् ‘आत्मा’ के विषय में अवश्य चिन्तन करता है। यह समझा जाता है। ये सारी बातें पत्नी जी ने कही हैं। क्योंकि पत्नी जी ‘सत्य’ के बारे में जानते हैं। ‘सत्य’ को जानने वाले ही ‘सत्य’ की बात कर सकते हैं।

पत्नी जी न केवल इस संसार के बारे में जानते हैं बल्कि उन सूक्ष्म संसारों के बारे में भी जानते हैं जो आँखों से दिखाई नहीं देते हैं, बल्कि सृष्टि के बारे में भी जानते हैं, उनकी पुस्तक ‘ज्ञान नवरत्न’ में, ज्ञात होता है कि ‘परब्रह्म’... ‘जीवन’ ईश्वर है... ‘शरीर’ मंदिर है। उन्होंने यह भी बताया कि

‘उद्धार पूजा, भजन, यज्ञों से नहीं होता है, बल्कि केवल ‘ध्यान’ के माध्यम से ‘आत्मा’ को जानने से होता है।’

पत्नी जी ने कहा है कि ‘श्वास पर ध्यास’ ही ध्यान है। और कोई अन्य विधि ध्यान नहीं है। क्योंकि पतंजलि महर्षि ने बताया है कि ‘धानम निर्विषयं मनः। इसका अर्थ है कि मन में कोई विषय नहीं होना चाहिए, अर्थात् मन काम नहीं करना चाहिए। मन जो कुछ भी करता है तो वह ‘ध्यान’ नहीं है। इसलिए हम जो भी मंत्र मन में जपेंगे या याद करेंगे, मन वहीं काम करेगा।

नाम और मंत्र पर ध्यान लगाने से भी मन काम करता है। चक्रों पर ध्यान केंद्रित करने पर भी मन काम करता है। इसलिए दिमाग जिस चीज पर फोकस करता है उसी पर काम करता है। लेकिन ध्यान एक ऐसी अवस्था है जहां मन काम नहीं कर रहा होता है। उस स्थिति को पाने के लिए आपको सांस का निरीक्षण करना होगा! तभी ध्यान आएगा, पत्नी जी कहते हैं।

क्या अधिक है, श्वास और मन एक साथ जुड़े हुए हैं। इसलिए यदि मन को अपने वश में करना है। देखिए, जब हम गुस्से में होते हैं तो हमारी सांस तेज हो जाती है। शांत होने पर श्वास धीमी होती है। इसका मतलब है कि सांस हमारे दिमाग पर निर्भर करती है। इससे हम समझते हैं कि हमें अ-मन की स्थिति प्राप्त करने के लिए सांस रोकनी होगी। इसलिए पत्नी जी कहते हैं कि श्वास को रोककर अर्थात् ‘श्वास पर ध्यान लगाकर’ हम भीतर की ओर यात्रा कर सकते हैं। सच्चे अध्यात्म को केवल पत्नी जी ही जानते हैं।

मेरा पुनर्जन्म

मैं बहुत अच्छा ध्यान करती थी। मैं दो घंटे सुबह और दो घंटे रात में करती थी। ध्यान करने की आदत पड़ जाने के बाद ध्यान करना बंद करना बहुत कष्टदायक होगा। ध्यान एक नशा जैसा था।

लेकिन ध्यान प्रचार करने में शौक नहीं था। इसलिए कही भी नहीं गयी, ध्यान करती थी, केवल पत्नी जी कि आने पर उनके साथ जाती थी। पत्नी जी शुरू में दो महीने में एक बार भीमावरम आते थे और आस-पास के सभी गाँवों को क्लास देते थे। पत्नी जी के साथ यात्रा करना अद्भुत था। वह कई कांसेप्ट बताते थे। उनके मुख से निकला हर शब्द हमारे जीवन के लिए आवश्यक है। यदि वह बोल रहे हैं तो सब लोग 'यह मेरे लिए ही कहा गया है' ऐसे सोचते थे। जो कुछ उन्होंने कहा उसे सुनने के बाद, "मेरा संदेह समाप्त हो गया।"— ऐसे बहुत लोगो ने कहा है।

मुझे भी कई शंकाएं थीं। जहां भी उनकी क्लास लगती थी, वे वहां जाते थे और 2 नवंबर 2003 को पत्नी जी की क्लास अमलापुरम में थी। हम सुबह जल्दी निकलना चाहते थे। मुझे सुबह उठते ही कॉफी पीने की आदत है इसलिए हमने तय किया कि हम सुबह चार बजे उठकर ध्यान करेंगे और निकलेंगे। मैं कॉफी लेने किचन में गई और जैसे ही मैंने चूल्हा चालू किया, मैं चूल्हे से आग की लपटों में घिर गई, मेरा पूरा शरीर जल गया! जल्द ही हमारे लोग आए और एक गलीचा ढक दिया। आग नहीं बुझी। फिर एक और गलीचे ने आग को ढँक दिया और आग बुझ गई। हाथ-पैर भी जल गए। मुझे तुरंत अस्पताल ले जाया गया। वहां डॉक्टर ने कहा कोई लाभ नहीं है। फिर भी अस्पताल में एडमिट किया गया। डॉक्टर ने जीवित रहने कि गारंटी नहीं दी।

उस दिन अमलापुरम की कक्षा में किसी ने पत्नी जी को इस बारे में बताया। तब पत्नी जी ने कहा, 'मैडम का काम अभी धरती पर है। सब मैडम

के लिए ध्यान करो'। वहाँ कक्षा समाप्त होने के बाद भीमावरम आये और मेरे साथ ध्यान किया और कहा, 'मैडम अवश्य जीवित रहेंगी'।

मेरी मां के बड़े भाई पश्चिम बंगाल से यह कहकर आए थे कि मैं मरने वाली हूँ। मेरी माँ ने मुझसे पूछा, 'तुम इतने अच्छे काम करते हो न? तुम इस तरह क्यों जली हो?'। ध्यान करते समय मैंने पत्नी जी से जो ज्ञान सीखा था, उससे मैं निराश नहीं हुई। क्योंकि मैंने इस जीवन में सब कुछ अच्छा किया है और मैं अभी भी अच्छी हूँ। 'लेकिन अतीत में, कई मछलियों, मुर्गियों और बकरियों को मार दिया होगा और उनका खून और मांस खाया गया होगा। मैंने समझ लिया कि शायद यह इसका ही परिणाम हो सकता है। जब मैंने ऊपरी दुनिया में कर्म कि अनुभव करने का निर्णय करके आयी हूँ तो मुझे भोगना ही पड़ेगा न! अगर मुझे यह नहीं पता होता तो शायद मैं दुखी होती थी। लेकिन पत्नी जी से मिले ज्ञान ने मुझे बहुत साहस दिया। यह सब मेरे कर्म का फल है! जब हम जानेंगे कि हमने जो कर्म किए हैं, उन्हें हम भोगेंगे, तो कोई और पीड़ा नहीं होगी। यदि आप जानते हैं कि जैसा आप बोयेंगे, वैसा ही अनुभव करेंगे, तो कर्म भोगते समय कोई भी पीड़ित नहीं होगा। लेकिन यह उन लोगों के लिए अज्ञात है जो ध्यान नहीं करते हैं। वे ही जानेंगे जिन्होंने ध्यान किया है और ज्ञान प्राप्त किया है।

भीमावरम अस्पताल में दस दिनों तक रखा गया। हमारे बच्चे इस बात से चिंतित थे कि अधिक लाभ नहीं हो रहा है और उन्होंने हैदराबाद अपोलो अस्पताल में प्रवेश लिया। वहाँ के डॉक्टर्स को भी जिन्दा बचना मुश्किल लग रहा था।

सभी परिवार के सदस्य बहुत चिंतित थे। किसी की समझ में नहीं आ रहा था कि क्या किया जाए। लेकिन अगले दिन पत्नी जी आए और कहा 'मैडम जरूर बच जाएंगी'। पत्नी मैडम को चार दिनों के लिए मेरे साथ ध्यान करने के लिए भेजा गया था। पत्नी मैडम ने मेरे बिस्तर पर एक पिरामिड रखा और ध्यान किया। कई पिरामिड मास्टर्स द्वारा भी ध्यान किया गया। अस्पताल में

शाम को ही मुझे देखने के लिए आगंतुक भेजे गए थे। राघवराव जी रोज आकर मुझसे ज्ञान की बातें करते थे। एक बच्चे की तरह देखभाल की गई, इतने आराम और प्यार से।

दो महीने के बाद मेरे शरीर का हर अंग गतिहीन हो गया। शरीर खून की कमी से मरा हुआ था। डॉक्टर रोज कांच का कपड़ा डालते और स्ई की बड़ी-बड़ी पोटली शरीर पर बांध देते, लेकिन दूसरे दिन मवाद और खून स्ई में बदल कर शरीर पर चिपक जाता। तब सेलाइन बॉटल्स को मेरे शरीर के ऊपर झुकाकर, फिर भिगोकर उन पट्टियों को निकालते थे। तब असहनीय पीड़ा और जलन होती, वह नरक के समान होती। देखिए, खाना बनाते समय जब एक उंगली जल जाती है तो इतना ही हम नहीं सेह सकते। और अगर लगातार जलता है तो कितनी जलन सहनी होगी। बिस्तर पे ऐसे ही लेटने से से दर्द होता था। यानी सोने में तकलीफ होती! उठने का मौका नहीं मिलता। यह जानने के बाद कि 'यह सब मेरे कर्मों का फल है' मुझे अपनी ध्यान शक्ति से दर्द सहने की शक्ति मिली। उन दो महीनों के दौरान मेरे शरीर ने पूरी तरह से हिलना बंद कर दिया।

डॉक्टरों का कहना था कि शरीर दवाओं का जवाब नहीं दे रहा था, इसलिए वे केवल ड्रेसिंग ही करते थे। तब तक तीन बार पत्नी जी आ चुके थे। मैं, जो हमेशा बहादुरी से बोलती थी, चौथी बार पत्नी जी के आने पर उन्हें पकड़ कर रोई। सर जब भी आते थे कुर्सी पर बैठ कर बातें किया करते थे, उस दिन मेरा बायां हाथ जो पूरी तरह जल चुका था, पकड़ कर फर्श पर बैठ गए। मैं रोयी कि मैं इस तरह एक इंच भी हिले बिना नहीं रहना चाहती।

मुझे सेवा पसंद है। मैंने सोचा, अगर मैं मर गयी, तो संस्थान बंद हो जाएगा, मुझे कुछ साल और जीना है और सेवा करनी है। मैंने पत्नी जी से कहा। मुझे नहीं पता था कि जीने की इच्छा इतनी दयनीय होगी। अन्यथा, मैं जीना नहीं चाहती थी। क्या जीवन व्यर्थ नहीं है? मेरे लिए सेवा ही जीवन है, अब मैं चौपाई से एक इंच भी आगे बढ़ नहीं सकती तो मैं इस तरह नहीं जीना

चाहती सर!

‘मैं बहुत देर तक पत्नी जी को पकड़ कर रोती रही। फिर पत्नी जी ने एक ही बात कही ‘क्या आप मुझ पर विश्वास करती हैं, मैडम?’।

मैंने कहा, ‘मैं निश्चित रूप से इस पर विश्वास करती हूँ, सर।’ तब पत्नी जी ने कहा, ‘तुम जीवित रहोगे। तुम सब काम करोगे। तुम सामान्य रूप से घूमोगे।’

तब तिरुपति में ध्यानयज्ञ हुआ। मैं फिरसे रोने लगी तब सर ने कहा की तिरुपति क्या मैडम? हम विदेशों में भी जाकर ध्यान के बारे में कहेंगे।

हम विदेशों में भी जाएंगे और ध्यान करेंगे। लेकिन तब मुझे उन शब्दों पर विश्वास नहीं हुआ। ‘मैं क्या हूँ? जब मैं एक इंच भी नहीं चल सकती तो मैं विदेश क्यों जाऊँ?’ मैंने सोचा लेकिन मई 2012 में जब मैं मलेशिया और सिंगापुर जाकर क्लासेस पढ़ा रही थी तो मुझे लगा कि अगर योगी के मुंह से कोई शब्द निकलता है तो होना ही चाहिए। तो उन्होंने मुझे दो घंटे तक दिलासा दिया और कहा, ‘अपनी आँखें बंद करो और मैं एक गाना गाऊंगा’, उन्होंने ‘नानती ब्रुकु नटकमु’ नामक एक गीत गाया और बाहर चले गए।

जन्मों में किए गए पुण्य...मैं सौभाग्यशाली थी कि इतने अच्छे शिक्षक द्वारा मुझे बच्चे की तरह सुलाने के लिए गाया गया। उस दिन से मेरी नजर में पत्नी सर एक पिता और गुरु बने गए। मेरे जाने के एक महीने तक भले ही दवाओं ने काम नहीं किया, फिर भी मैं जीवित निकल आयी।

यह आप कितने शक्तिशाली हैं, इस पर निर्भर करता है। भले ही दवाएं काम नहीं कर रही थीं और शरीर जलाऊ लकड़ी की तरह अकड़ गया था और डॉक्टरों ने कहा कि मैं मर जाऊंगी, मैं सर द्वारा दी गई ऊर्जा से जीवित निकल आयी। डॉक्टर समेत सभी हैरान रह गए।

मैं जिंदा हूँ लेकिन अभी तक नहीं चल पा रही हूँ। नहाने के लिए दो नर्स थीं। डॉक्टर ने मुझे छह महीने तक नहीं चलने को कहा था। और नर्सों और

अपने पति की मदद से मैं पैदल चली और पंद्रह दिनों में अपोलो की पहली मंजिल पर चढ़ गई! डॉक्टर हैरान रह गए और पूछे, हम ने सोचा कि आप जीवित नहीं होंगे, फिर इतनी जल्दी कैसे चल पा रहे है? आप 'दवा' देते हैं और हम 'ध्यान' करते हैं। अगर हम दोनों को मिला दें तो हम जल्दी ठीक हो जाएंगे, मैंने डॉक्टरों से कहा।

चलना शुरू करने के बाद मैं पत्नी सर के घर गयी। सर, जैसे ही हमारी कार स्क्री, वह कार के पास आए, दरवाजा खोले, मुझे कार से बाहर ले गए एक छोटे बच्चे को प्यार से कैसे उतरते है वैसे मुझे कार से उतार के, घर में बिठाकर उनके माँ से ऐसे बोले : 'माँ भीमावरम मैडम हमारे घर आये ह, आओ' ऐसे बुलाके मुझे उनको दिखाया।

जैसे मरनेवाला बच्चा ज़िंदा घर आने पर एक पिता कैसे खुशी होंगे वैसे पत्नी जी के चहरे पर उतना आनंद देखा।

सर ने मेरी ओर देखते हुए कहा, आप ने बहुत सुन्दर जैसे 'अपरानजी कि गुड़िया की तरह है मैडम'। उस समय मेरे बाल, भौहें, चेहरा और पैर सफेद धब्बों के साथ बहुत भयानक थे, ऐसे कहा है तो उनके शब्दों का गंभीर अर्थ हम जान सकते है। बिना अर्थ के कोई बातें सर नहीं बोलते। सर के बातों में बहुत गहरे अर्थ होते है। उच्च ज्ञान से ही वे समझ में आएंगे। मेरा शरीर जलने से पहले मुझे बहुत घमंड था। मैं खूबसूरत हूँ, मुझे सबकुछ पता है, मैं जानती हूँ वे ही करेक्ट है, ऐसी समझती थी। लेकिन अस्पताल की तीन महीने में पत्नी सर के हर एक बात को अवलोकन करने से समझ में आया है की मैं कितनी अज्ञानी हूँ। हम सोचते है कि हर बात हमारे हाथ में है, हम क्या सोचते है वैसे ही होगा। लेकिन कुछ भी हमारे हाथ नहीं होगा। जैसा हम सोचते हैं वैसा नहीं होता है। प्रकृति सब कुछ देखती है और समझती है कि हमने अतीत में जो किया है, उसे वही मिलेगा जो उसे देना चाहिए।

कर्म से कोई नहीं बच सकता। हमें पता होना चाहिए कि हमारा

जीवन कर्म के सिद्धांत पर चलता है। पत्नी जी कहते हैं, 'अच्छा करोगे तो अच्छा बनोगे, बुरा करोगे तो बुरा बनोगे।'

इस प्रकार मेरे शरीर पर से ममकार और मेरा अहंकार दोनों चला गया। इन तीन महीनों में मेरी आत्मा शुद्ध सोना बन गई है। इसलिए पत्नी जी ने ऐसा कहा। पत्नी जी कभी बाहरी सुंदरता नहीं बल्कि आंतरिक सुंदरता देखते थे। योगी अंतर सौंदर्य ही चाहते हैं।

मैं ऐसा क्यों कह रही हूँ क्योंकि एक दिन मैं राजमंड्री में पत्नी जी की क्लास में गयी थी। बहुत से लोग पत्नी जी के पास आए। मैं पत्नी जी के पास बैठ गयी। इसी बीच एक अच्छे मेकअप वाली महिला आती है और सर के पास बैठ कर बातें कर रही होती है। तुरंत पत्नी जी ने कहा 'यहाँ मिस इंडिया और मिस वर्ल्ड प्रतियोगिताएं नहीं हो रही हैं'। जब उन्होंने यह कहा, तो उनका मतलब था कि शरीर की सुंदरता से ज्यादा महत्वपूर्ण आत्मा की सुंदरता है। क्या आंतरिक सुंदरता को देखना उचित है लेकिन बाहरी सुंदरता को नहीं? मुझे लगा कि सर मुझ में आत्मा की सुंदरता की सराहना करते हैं। मैंने तुरंत सर से कहा 'श्रीमान! मैं दुनिया को मुँह नहीं दिखा सकती, ऐसा बना है और आपको देखने की मेरी इच्छा कैसे पूरी होगी?' तब सर ने मुझे वरदान दिया। 'मैडम! जब तक तुम बाहर नहीं निकलोगे तब तक मैं तुम्हारे लिए आऊंगा' और हर महीने एक दिन आते थे और रात भर हमें कई सारे कॉन्स्टेंस बताते, बहुत सारा ज्ञान का बोधन करते थे।

मैं एक कीड़े की तरह थी और तितली में बदल गयी। ऐसा हर महीने पत्नी जी आते थे दो साल बाद पत्नी जी ने मुझसे एक शब्द कहा। 'मैडम, मैंने आपको अपना वचन दिया है, इसलिए अवश्य आना ही है। लेकिन अगर मैं बहुत दूर हूँ, तो आना मुश्किल होगा न!' ऐसा कहा।

मुझे तब लगा मैंने आपको अपनी खुशी के लिए परेशान किया, और यह सोचकर कि मुझे अब आपको परेशान नहीं करना चाहिए, मैंने कहा, 'सर!

अब मैं ठीक हूँ! मैं आपको फिर कभी परेशान नहीं करूँगी, आपके लिए मैं ही आऊँगी सर! सर मेरी जैसे शिष्य को वचन दे कर, उस वचन के लिए वे कितना भी कष्ट होने पर भी आते थे। आजकल ऐसे शिष्य हैं जो गुरुओं के पीछे भागते हैं लेकिन ऐसे कितने गुरु हैं जो अपने शिष्यों को अपने बच्चों की तरह मानते हैं और उनके पास जाकर उन्हें दिलासा देते हैं।

उस मामले में, 'मैडम! आपके पिछली जनम के बारे में बताऊँ? पत्नी जी ने मुझसे पूछा, लेकिन मैंने कहा 'नहीं'। तब सभी ने मुझे से पूछा 'अपने पिछले जन्म के बारे में क्यों नहीं जानना चाहते?' लेकिन मुझे अतीत को जानने में कोई दिलचस्पी नहीं थी। किसी भी जन्म में, किसी को भी, पिछले जन्म की यादें नहीं होती। इसका मतलब है कि विधाता ने यह नियम रखा है। तो, पिछले जन्म का अनुभव वर्तमान जन्म में आवश्यक नहीं है।

मैंने पत्नी जी से सीखा कि वर्तमान अतीत पर आधारित है, अच्छा अच्छा है और बुरा बुरा है। और क्योंकि मैंने बहुत पुण्य किया है, इसलिए मुझे इस जीवन में पत्नी जी जैसा अच्छा शिक्षक मिला। यानी मेरा पिछला जन्म अच्छा जन्म था। लेकिन यह जन्म मेरे लिए महान है। क्योंकि मैं पत्नी जी की शिष्य हूँ। अगर मैं ऐसा सोचती हूँ तो मुझे बहुत खुशी होती है। इस खुशी से बीता हुआ कल भले ही बड़ा हो, मेरे लिए कम है। पत्नी जी कि शिष्य जाना जाये इससे बढ़िया मुझे और क्या हो सकता है? इसलिए मैंने सर से कहा 'मुझे अपना अतीत नहीं चाहिए'।

मेरे इस ज्ञान को प्राप्त करने में मेरे पति का भी उतना ही योगदान था जितना कि मेरा, राघवराव से शादी करने के बाद मैं वास्तव में खुश थी। लेकिन साधना में प्रवेश करने के बाद वह खुशी दोगुनी हो गई। पत्नी जी से मिलने के बाद जन्म क्या होता है? हम कैसे जन्म लेते हैं? हम अपने आस-पास के लोगों को कैसे चुनते हैं? मैंने सीखा कि हम माता-पिता, पति, लड़की या लड़का कैसे बनते हैं। जब मुझे पता चला कि हम अपना जीवन खुद डिजाइन करते हैं, तो मुझे जीवन के बारे में बहुत कुछ समझ में आया।

जब मेरा एक्सीडेंट हुआ था, तो मेरे पति ने मुझे बड़े प्यार और स्नेह से देखा था, पत्नी सुन्दर है तो पति भी प्यार से देखता है, लेकिन जब मैं बीमार थी और अपनी सारी सुंदरता खो चुकी थी और पांच या चार महीनों के लिए बिस्तर पर पड़ी थी। मुझे एक छोटी बच्ची की तरह पालते थे और मेरी बहुत सेवा की। जब वह अस्पताल आते, तो उन्होंने वह घंटे मेरे साथ बिताएं, आध्यात्मिक बातों के बारे में बात करते थे और मुझे बहुत से विषय बताते। मेरे शरीर में जलन न हो, इसके लिए वे मुझे बहुत-सी आध्यात्मिक बातें बताते थे, किताब में पढ़ी हुई नई-नई बातें बताकर मेरा ध्यान हटाते थे। वे रोज़ ढेर सारी बातें किया करते थे। जब तक मैं बिस्तर पर थी, वह मुझे एक शिक्षक की तरह बहुत सी बातें सुनाते थे। वह मेरे आध्यात्मिक विकास के लिए बहुत उत्साहजनक है। इसी तरह मैंने दो साल तक ध्यान किया, कई किताबें पढ़ीं और जब पत्नी जी आते तो उनसे बहुत कुछ सीखा।



ध्यान करने का विधान श्वास पर ध्यान



उचित आसन पर आराम से बैठकर दोनों हाथों को मिलाकर दोनों आँखों को बंद कर स्वाभाविक रूप से होने वाले उच्छ्वास निश्वासों को ध्यान देना चाहिए।

अनेकानेक विचार मन में आते हो तो उन्हें काटते हुए फिर से श्वास पर ही ध्यान देना चाहिए। क्रमशः विचार रहित स्थिति प्राप्त हो जाएगी। चित्तवृत्तियों का निरोध होगा, मन निर्विषय हो जाएगा, मन शांत होगा, वही ध्यान स्थिति है।

इस निर्विचार स्थिति में अनेकानेक शारीरिक नाड़ी मण्डल आत्मानुभवों को ध्यान देते रहना चाहिए। उस स्थिति में विश्वमय प्राणशक्ति अपार रूप से शरीर में प्रवेश कर नाड़ी मण्डल का शुद्धिकरण करती है।

इस शक्ति के कारण सारी बीमारियां दूर होंगी नाड़ीमंडल की शुद्धि से कर्म नष्ट होंगे। प्रत्येक दिन जिसकी जितनी उम्र हो उतने मिनट दिन में दो बार अवश्य ध्यान करना चाहिए।

मेरा ध्यान अभियान

उस घटना के बाद से मेरा जीवन पूरी तरह से बदल गया है। एक तरह से कहूं कि मेरा 'पुनर्जन्म' हुआ है।

अस्पताल से आने के बाद मैं ध्यान करती थी और किताबें पढ़ती थी। भले ही मैंने दो साल तक ध्यान किया, लेकिन मुझे यह भी लगा कि मुझे ध्यान को सबके साथ साझा करना चाहिए। इस अद्भुत साधना को जाने बिना कोई भी ध्यान नहीं कर रहा है। माना जाता है कि मोक्ष सभी पूजाओं, भजनों, स्तोत्रों, तीर्थों, मंत्रों और यज्ञों से आता है। लेकिन यह कोई नहीं समझता कि केवल ध्यान के द्वारा ही मनुष्य वांछित स्तर तक जा सकता है। यह कोई गुरु नहीं बता रहे थे।

बहुत से लोग भगवद गीता पढ़ रहे हैं। लेकिन गीता में श्री कृष्ण परमात्मा ने जो कहा, 'योगी बनो' यह कोई नहीं समझता। इसलिए कोई भी योगी बनने की कोशिश नहीं कर रहा है। सब भक्त जैसे ही रहते हैं।

उन्हें लगता है कि 'पूजा करने से ही सब कुछ भक्तिमय है'। वे उससे संतुष्ट हैं। यदि कठिनाइयों का समाधान नहीं होता है, तो वे मानते हैं कि भगवान की कोई दया नहीं है, वे दूसरे भगवान, या किसी अन्य धर्म में बदल जाते हैं। इसके अलावा, कोई नहीं जानता कि 'ईश्वर' किसी की भी समस्या दूर कर देगा। उन्हें अपनी समस्याओं को दूर करना होगा। वह शक्ति उन्हीं की है। वे इसे जान नहीं पा रहे हैं।

'ज्ञान' प्राप्त करने वाले किसी वस्तु के लिए शोक नहीं करते। भगवान ने गीता में कहा है, 'ज्ञानाग्नि दग्ध कर्माणां'। इसका अर्थ है कि 'ज्ञान' के कारण सभी कर्म जल जाते हैं और सभी कठिनाइयाँ दूर हो जाती हैं। और ये सब पूजा क्यों करते हैं? इसका कारण माता-पिता के हैं जिन्हें आत्मज्ञान नहीं

है और शिक्षकों के कारण सारा समाज 'मूर्ति ही ईश्वर है' ऐसा समझता है और सभी मूर्ति अर्थात् असत्य का सहारा ले रहे हैं। लेकिन कोई भी 'सत्य' यानी 'आत्मा' का सहारा नहीं ले रहा है। ध्यान नहीं कर रहा है। पत्नी जी के आने तक मुझे इस बारे में पता भी नहीं था।

संसार में 'सत्य' को जानने वाले शिक्षक होते हुए भी धन और लोक के मोह में झुककर लोगों को असत्य मार्ग पर ले जा रहे हैं। जब पत्नी जी आए तो हमें न केवल सिखाया गया कि सच्चाई क्या है, हम यह जान पाए कि मूर्ति भगवान नहीं है, बल्कि 'आत्मा' भगवान है। उन्होंने कहा, 'मूर्ति को पकड़ने का कोई फायदा नहीं है, 'आत्मा' को पकड़ना पड़ता है। ध्यान 'आत्मा' को पकड़ने का तरीका है...

वे कहते थे, "ईश्वर बाहर नहीं मिलता, अन्तर में ही मिलता है। इसलिए अगर हम परमात्मा को अपने भीतर छोड़ दें और बाहर की मूर्ति से चिपके रहें, तो यह समय की बर्बादी है, है न? और यदि आप वह करते हैं जो आपको करना है, तो आप निश्चित रूप से इसे प्राप्त करेंगे।

पत्नी जी को कोई जनाकर्षण या धनाकर्षण की जरूरत नहीं। वह एक महान व्यक्ति हैं जो 'सत्य' बताने के लिए धरती पर आए। कोई जैसे भी सोचो उनको कोई परवाह नहीं। वह किसी से सत्य को छिपाते नहीं और बहुत ईमानदारी से बोलते थे। ऐसा शिक्षक मिलना सच में सौभाग्य की बात है।

आदि शंकराचार्य एक शब्द कहा करते थे। मानव जन्म 'त्रिरत्नमयम' है। वह तीन रत्न कौन से हैं? एक तो मनुष्य जन्म पाना है। मनुष्य जन्म पाना रत्न को पाने के समान है। और दूसरा रत्न है 'मोक्ष' पाने की इच्छा और 'सत्य' को जानने की इच्छा का जन्म। यह दूसरा रत्न खोजने जैसा है। और तीसरा रत्न है एक ऐसे गुरु की खोज करना जो आपको उस मार्ग पर ले जा सके यदि आप में मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा है। लेकिन इन तीनों रत्नों की प्राप्ति दुर्लभ है। और पिरामिड मास्टर्स को तीनों मिल गए! यानी इस धरती पर पिरामिड मास्टर्स

से ज्यादा खुशनसीब लोग कोन हो सकते हैं।

पत्री जी के कारण हर कोई ध्यान का अभ्यास कर रहा है और बुद्धिमान पुस्तकें पढ़ रहा है। आत्म ज्ञान सत्संग में जाना। ज्ञान से जुड़ी कई नई चीजें सीखी जा रही हैं। जब भी मैं इस तरह की नई चीजें सीखती हूं, तो यह बहुत ही अद्भुत और खुशी की बात होती है।

पत्री जी कहते थे कि कुछ 'बांटा जाए तो बढ़ जाता है।' जब यह बात समझ में आई तो मैंने सोचा कि जो 'ध्यान' सीखा था, 'सत्य' जो सीखा था, वह सबके साथ साझा करना चाहिए। मुझे शंका होती थी। पत्री जी कहते थे कि दो बातें कह दें तो काफी है। यानी 1) अहिंसा, 2) आनापानसती। वे कहते थे कि इन दोनों के बारे में लोगों को बता देना काफी है। फिर मैंने हिम्मत जुटाई और कहा, सर, मैं भी 'ध्यान' बताना चाहती हूं। तो सर कहते, आप ध्यान बताने के लिए पैदा हुए हैं। लेकिन अब तक आपने अपना मुंह नहीं खोला, आपने किसी को बताया नहीं। इसलिए मैंने कुछ नहीं कहा। अब मैं बहुत खुश हूं कि तुम ध्यान के बारे में बताओगी। इस तरह मुझे गुरु की कृपा मिली। फिर मैंने सोचा, मैं कैसे शुरू करूं?

बहुत सी स्त्रियां कार्तिक मास में मांसाहार नहीं करती हैं, इसलिए मैंने सोचा कि उसी मास से प्रारंभ करना अच्छा होगा। मैं वह भीमावरम में करना चाहती थी और इसे सभी को सिखाना चाहती थी। फिर हमने 'घरेलू ध्यान' के रूप में चालीस दिनों के लिए मंडला दीक्षा शुरू की और चालीस घरों को बुक किया और तारीखों के अनुसार पैम्फलेट छपवाए और उन्हें सभी को वितरित किया। ऐसा वे रोज गली-गली में करते थे। वे उसी गली में पर्चे बांटते और उन्हें ध्यान के लाभों के बारे में बताते। 40 दिनों के शुरू और खत्म होने के समय जब कई लोगों ने हमें अपने घर में ध्यान करने के लिए कहा, तो राघव राव जी ने हमें 108 दिनों तक करने के लिए कहा और उन्होंने तुरंत 108 दिनों के लिए पर्चे छपवाने शुरू कर दिए। क्या मैं इसे पूरे दिन अपने दिमाग में कर सकती हूं? वो डरावना था। लेकिन राघव राव जी के प्रोत्साहन से ऐसा किया

गया ।

पत्नी जी की क्या यादें हैं, कई गांव कई लोगों से मिलते थे, बहुत सारे ध्यान अभियान करते हैं, और कहते हैं कि वे भीमावरम में घर पर ध्यान नामक कार्यक्रम कर रहे हैं तो बहुत हड़बड़ी में भी बीच-बीच में फोन करके, कैसा हो रहा है मैडम? ऐसे पूछते थे । ठीक चालीस दिन पूरी होने के बाद सर ने कहा कि ‘कल चालीस दिन पूरा होगा, मैं भीमावरम आ रहा हूँ,’ ऐसे बोला ।

मैं बहुत हैरान हुई । चाहे कितनी भी काम है तो भी सर को यह बात कितनी अच्छी तरह याद है?

ऐसे ही जब 108 दिन का ध्यान कार्यक्रम हुआ, तब भी सर ने बोला ‘108 दिन पूरे होने जा रहे हैं — कल आप किस क्लास में होंगे, मैं वही आऊंगा ।’ उनकी बातें सुनकर हम सब बहुत खुश हो गये । यह वास्तव में आश्चर्यजनक है और वह मल्टी डायमेंशनल है न! इसलिए लगा कि कुछ भी संभव है । तब हमने सर से कहा कि, हमारे क्लास को आप आना नहीं सर, हम आप की क्लास की व्यवस्था करेंगे । इस तरह पत्नी जी के क्लास की व्यवस्था की गई, उस क्लास में 108 दिन तक आने वालों और ज्यादा क्लास बुक कराने वालों को सर ने सम्मानित किया । वे सभी बहुत खुश हुए और पूछा ‘क्या, इतने छोटे से काम के लिए इतने बड़े महानुभाव से हमें सम्मान मिला है?’ इसलिए वे कहते हैं, ‘यदि आप वह करते हैं जो आपको करना है, तो आपको वही मिलेगा जो आपको प्राप्त करना है’, इसलिए उन्होंने वही किया जो उन्हें करना था, और उन्हें वह मिला जो उन्हें मिलना चाहिए । ‘होम मेडिटेशन’ यज्ञ पूरा करने के बाद मुझे बहुत खुशी हुई ।

सबसे पहले, ‘क्या कहना है?’ मैंने डर के मारे सर से पूछा तो उन्होंने कहा, ‘अपना अनुभव बताओ’ । फिर मेरा ‘पुनर्जन्म’ का अनुभव और ‘उत्तर गीता’ के स्तोत्र के बारे में बताया ।

श्लोकः पूज कोटि समं स्तोत्रम्, स्तोत्र कोटि समो जपः

जपकोटि समं ध्यानम्, ध्यान कोटि समो लयः

इस स्तोत्र के बारें में बताकर और कहा कि ध्यान अन्य सभी से श्रेष्ठ है। ऐसा कहते रहते हैं तो ऐसा लगता है कि हर दिन कुछ नया कहना है। तो फिर 'उत्तर गीता' पढ़कर मुझे कुछ नया मिल जाता। अगर मैं वह रोज कह रही होती, तो जो बातें मैं कहती वह मेरे लिए नई होतीं। सर ने कहा कि, 'मैडम! दो सूक्ष्म गुरु ध्यान को बढ़ावा देने वालों की मदद करेंगे। इसलिए ऐसा कहने का प्रयास करें।'।

फिर मैं और हिम्मत करके आगे बढ़ी और इस तरह 108 दिन पूरे किए। कुदरत ने फौरन मुझे तोहफा दिया। वीरजगदेश्वरी मैडम ने फोन किया और कहा 'आपको विशाखापत्तनम् में एक दिन की क्लास करनी चाहिए'। मैंने कहा 'मैं इसके बारें में सोचूंगी'। तुरंत सर का फोन आया। मैंने सर से पूछा 'सर वीरजगदीश्वरी मैडम ने फोन किया और क्या मैं वनडे क्लास ले सकती हूँ?' सर ने तुरंत कहा कि 'आपने 108 दिन की क्लास लि है मैडम, एक दिन कि क्लास क्यों नहीं ले सकते है?'

जब सर ने ओके कहा तो मुझे बहुत हिम्मत आई कि मैं निश्चित रूप से एक दिन का सत्र कर सकती हूँ। क्योंकि मेरा विश्वास है कि जिन शिष्यों पर गुरु की कृपा होती है वे अवश्य ही कुछ भी कर सकते हैं।

पत्री जी कहा करते थे: 'प्रकृति सब कुछ देखती है'। ऐसा लगता था कि कुदरत ने मेरे प्रमोशन के लिए मुझे एक दिन का मास्टर बना दिया है। इसलिए मैंने अपनी पहली एक दिवसीय क्लास की।

हालाँकि यह कुछ दिन फिर से होगा, मैंने सोचा कि 108 बार करना अच्छा होगा। आपको 108 गांवों में जाना है और बताना है। मैंने एक लक्ष्य निर्धारित किया। मैंने फिर से पत्री जी को अपनी राय बताई। पत्री जी ने अवश्य करने को बोले। उनके पूरा होने के तुरंत बाद पत्री जी ने 'देवालय

ध्यानालय' नामक एक पुस्तिका जारी की। तब मुझे लगा कि सर ने मंदिरों को ध्यान कक्षाओं में बदलने के लिए एक पैम्फलेट जारी किया है, और मैंने मंदिरों में ध्यान सप्ताह स्थापित करने के बारे में सोचा है। सर हाँ कहने पर 40 मंदिरों में सप्ताह पूरा किया।

सप्ताह पूरा करने के बाद, मैंने फिर से प्रत्येक मंदिर में चालीस दिनों के लिए एक कक्षा आयोजित की और प्रत्येक गुरु को चालीस दिन नियत किए। भीमावरम में इतने सारे उस्ताद पले-बढ़े। पत्नी जी की किताबों की वजह से और राघवराव जी की किताबों की वजह से किसी को भी कक्षाएं बताना बहुत आसान है।

मंदिरों की शिक्षाओं के कारण, हर एक को अच्छा स्वाध्याय करने का आदत हो गया है, जहाँ भी क्लासेस होते हैं, वहाँ बिना गैरहाजिर सभी लोग आते थे। तब हमें समझ आया कि आखिर क्यों पत्नी जी सभी को प्रमोट करना चाहते थे।

जब हम ध्यान करते हैं, दूसरे लोग ध्यान के बारे में सीखते हैं, और हम बढ़ते हैं। हम जो किताबें पढ़ते हैं और जो कक्षाएं सुनते हैं, वे हमारे ज्ञान को बढ़ाने के लिए होती हैं। लेकिन हम हमेशा दूसरों की बात सुनकर शिष्य बनते हैं। लेकिन जब हम बताना शुरू करते हैं तभी से हम गुरु के रूप में विकसित होते हैं। हर एक पिरामिड मास्टर, साधना और बोधना दोनों से ही 'मौजूद स्थिति से उच्च स्थिति' तक बढ़ेंगे। इसलिए पत्नी जी हम से क्लासेस करवा देते हैं। लेकिन स्वाभाविक रूप से गुरु केवल शिष्य बनाते हैं। लेकिन पत्नी जी सभी को गुरु बनाते हैं। इसलिए 'महान गुरु' के रूप में पत्नी जी सभी के प्रशंसक हैं।

चालीस मंदिरों के बाद, पत्नी जी ने भीमावरम में 'ध्यान ग्रामीण' वर्ग संचालित करने की तिथि दी। पश्चिम गोदावरी में 900 गाँव हैं, सभी गाँव शामिल हैं।

राघवराव जी की इच्छा अभियान को पूरा करने और अधिक से अधिक लोगों को पत्री सर के वर्ग में लाने की है। इसलिए कार्यक्रम के लिए एक बड़ा मैदान बुक किया गया था। हम सबने पूछा 'क्या इतना बड़ा मैदान भरा जा सकता है?' हमने सोचा लेकिन हमें लगा कि अगर राघवराव जी की मर्जी है तो यह जरूर होगा।

भीमावरम के सभी आचार्यों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया और इस कार्यक्रम को बहुत भव्य बनाने में सफल रहे। कड़ी मेहनत करने के बाद, वह व्यक्तिगत रूप से गांव-गांव गए, ताड़ के पौधे दिए और उन्हें बिंदी लगाकर आमंत्रित किया जैसे कि उन्हें किसी शादी में आमंत्रित किया गया हो। पूरे भीमावरम में दो दिनों तक पूरा बैंड-बाजा लगाया गया और घर-घर परचे बांटे गए और बूंद-बूंद डालकर उनका आह्वान किया गया। राघव राव जी जो कुछ भी करते हैं वह बहुत विविध होना चाहिए। उन्होंने कहा कि वह जो कुछ भी करते हैं उसमें कुछ नया होना चाहिए, बाकी सभी के अलग।

डी.एन.आर. कॉलेज मैदान में आयोजित कार्यक्रम में लगभग तेरह हजार लोग शामिल हुए! अगर हम हर शहर से बसों और कारों में आए सभी लोगों के लिए जमीन पर भोजन की व्यवस्था करते हैं, तो उन्हें देर से यात्रा नहीं करनी पड़ेगी, हमने भोजन पैक किया और कारों और बसों में परोसा। हमने जमीन पर स्थानीय लोगों के लिए व्यवस्था की। राघवराव जी ने बिना किसी परेशानी के बहुत अच्छी व्यवस्था की। पत्री जी ने भी प्रोग्राम में बहुत अच्छी तरह से क्लास किये।

प्रोग्राम शुरू होने से पहले ही हम एक बात बताये कि सर हमने सब को बुलाया, आशा करते हैं कि बहुत लोग आएंगे। फिर वेन्यू के सभी लोग आप कि बोधन से सम्मोहित होना चाहिए।

हमने प्रयास किया है, और आपकी दया उन पर बनी रहे। हमने कहा कि अपने शिक्षण से उन सभी को प्रभावित करें।

तब तक हुए कार्यक्रमों में इतने लोग नहीं आए थे। और पत्री जी ने वेमना कविताएं बहुत ही शानदार तरीके से गाई और बताया कि हमें मांसाहार से परहेज क्यों करना चाहिए। उसी तरह ध्यान भी अनूठा है और हर कोई कहता है कि हमें ध्यान क्यों करना चाहिए। उन्होंने बताया कि कलियुग क्या है और सतयुग क्या है जो अभी आ रहा है.. उस युग की विशेषताओं और लोगों को कैसे जीना चाहिए, इस बारे में विस्तार से बताया। उन्होंने मुझे कलियुग में आने वाली कठिनाइयों से मुक्ति पाने के उपाय बताए। आपकी परेशानियों को दूर करने का तरीका आपके हाथ में है। कोई भी भगवान हमारी परेशानियों को दूर नहीं कर सकता है। उन्होंने कहा, 'जो कोई भी अपने जीवन में ध्यान करेगा, वह हमेशा खुश रहेगा। जो कोई भी ध्यान को बढ़ावा देगा, वह ब्रह्मानंद की स्थिति में होगा। कार्यक्रम बहुत सफल रहा। सभी समाचार पत्रों ने लिखा, 'ध्यान का सागर भीमावरम में उमड़ आया है'।

इसी तरह हम भीमावरम पिरामिड मास्टर्स, सभी मिलकर जो प्रयास किया उसकी मीठी यादों को हम संभालकर रखे हैं।

इसी तरह हम प्रचार करते रहते हैं। पत्री जी ने हमें 'ध्यान ग्रामीण' वर्ष के लिए फिर से 'ध्यान महिला कार्यक्रम' करने के लिए कहा। फिर से कार्यकर्ताओं और उस्तादों ने अभियान तेज कर दिया। महोदय, आपका क्या मतलब है .. 'सभी महिलाओं को कार्यक्रम में होना चाहिए, उसमें एक भी पुरुष नहीं' होना चाहिए। कोई भी आदमी ग्राउंड पर नहीं दिखना चाहिए। उन्होंने कहा, 'यह महिलाओं का कार्यक्रम है न?' हमने सबको यही बताया। लेकिन जिले में दूर से आए लोगों को वापस जाने के लिए पुरुषों की मदद की जरूरत होती है! इसलिए, कुछ ही पुरुष दूर से आए थे। चूंकि मैदान में सभी महिलाएँ थीं, हमने पुरुषों को भीतरी हॉल में यह देखने के लिए बैठाया कि क्या चल रहा है, और बाहर जो कुछ भी हो रहा था उसे एक स्क्रीन पर सेट किया गया और 'लाइव' दिया गया।

लेकिन सर गाड़ी से उतरते ही आदमियों के पास गए और उनसे हाथ

मिलाया। इससे मालूम पड़ता है कि सर बीच में हमारे अनुशासन कि परीक्षा करेंगे। लेकिन वे सबको खुश कर देंगे। उस दिन सर ने 'जाबालि', के बारे में एक अद्भुत अवधारणा दी और सभी महिलाओं को बहुत उत्साहित किया।

भीमावरम में आयोजित सभी कक्षाएं अद्भुत थीं। उसके कारण हम सभी बेहतर बढ़ते हैं, जितना बेहतर हम बढ़ावा देते हैं, उतना ही बेहतर हम शिष्यों के रूप में नहीं बल्कि शिक्षकों के रूप में विकसित होते हैं। सर भी यही कहते हैं। कहा जाता है कि जीवन में शिष्य की तरह नहीं बल्कि गुरु बनना चाहिए। ऐसे मेरी ध्यान प्रचार जारी रहा, आज मैं तीन दिन क्लासेस ले रही हूँ, इसका कारण पत्नी जी और मेरे पति ही है।

पत्नी जी हमेशा कहते थे कि 'जो बांटो वह दो गुणा हो जाता है'। मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ। पत्नी जी कहते थे कि ध्यान करने में आनंद की तुलना में ध्यान कहने में हजार गुना अधिक आनंद है। यह शाब्दिक सत्य है।

पत्नी जी: जिन्हें मैंने जाना

पत्नी जी को समझना बहुत ही मुश्किल है। शारीरिक और मानसिक स्थिति में रहनेवाले उनको नहीं समझ सकते उनकी कथनी और करनी को समझने के लिए हमें इन दोनों अवस्थाओं से आगे बढ़कर मन और आत्मा की अवस्थाओं में पहुंचना होगा। वह वही समझ सकता है जो उस अवस्था में होता है।

जो शारीरिक स्थिति में हैं, वे पूछते हैं कि, ‘महिलाओं और लड़कियों को इतने करीब लाया जाता है। वे पैर क्यों दबाते हैं?’ ‘स्वामीजी जैसे लोग ऐसा नहीं करते हैं?’ तात्पर्य यह है कि शारीरिक अवस्था में स्त्री और पुरुष में भेद होता है, परन्तु जो अज्ञानी लोग यह नहीं जानते कि ऐसा भेद नहीं होता, वे स्त्री और पुरुष को अलग-अलग देखें और बात करें, इसलिए कहा जा सकता है कि वे शारीरिक स्थिति से परे नहीं हैं।

और जो मानसिक स्थिति में हैं, वे पूछते हैं कि ‘वह इतना क्रोधित क्यों है? क्या आप इसे धीरे से नहीं कह सकते? ऐसा क्यों मार रहे हैं।’ ऐसा पूछने वाले अवश्य ही मानसिक स्थिति में है।

क्योंकि जो मानसिक स्थिति में होते हैं उनमें अहंकार होता है। गुरु इसे गायब करने के लिए इस तरह कार्य करता है। यह न जानते हुए, वे उसके शब्दों और कार्यों को गलत समझते हैं। ‘पत्थर को मूर्तिकला बनना चाहिए’ का अर्थ है कि पत्थर को मूर्तिकार के हाथ में छेनी से कई बार करने चाहिए। यदि मूर्तिकार पत्थर को पीड़ा देने के लिए कुछ भी नहीं छोड़ता है तो एक पत्थर कभी मूर्ति नहीं बनेगा। गुरु एक मूर्तिकार की तरह है। गुरु ऐसा कार्य करते हैं जैसे पत्थर-अज्ञानी शिष्य को अपने शब्दों की छेनी से मूर्ति में बदल देते हैं। अगर हम यह नहीं जानते हैं तो हम ही हारेंगे। इसलिए जो मानसिक स्थिति में हैं वे उसके व्यवहार को गलत समझते हैं लेकिन उसके पीछे का कारण नहीं खोजते।

और तीसरे प्रकार के हैं ‘जो ज्ञान की स्थिति में हैं’। वे महसूस करते हैं कि उनका एक-एक शब्द कितना कीमती है। केवल वे ही उन्हें समझ सकते

हैं जिनकी बुद्धि विकसित है। लेकिन सामान्य लोग उन्हें नहीं समझ पाते। केवल वे जो बौद्धिक रूप से परिपक्व हैं उसकी शक्ति और ज्ञान को समझ सकता है। वरना वह नहीं समझेगा।

जो आध्यात्मिक रूप से बड़े हुए हैं वे समझेंगे कि वह इस धरती पर क्यों आए.. इस धरती के लिए क्या काम चाहिए.. वह क्या कर रहे हैं। वह इस पृथ्वी पर धर्म स्थापित करने और सत्य क्या है यह बताने आए हैं।

सत्य यह जान लेना है कि प्रत्येक मनुष्य स्वयं परमात्मा अर्थात् 'आत्मा' है। आनापानसती ध्यान सत्य को जानने का मार्ग है। ध्यान के द्वारा ही प्रत्येक व्यक्ति जान सकता है कि वह परमात्मा है। और अच्छी तरह से ध्यान करने में सक्षम होने के लिए, व्यक्ति को धर्म का अभ्यास करना चाहिए, जिसका अर्थ है मांस खाने से बचना, जो कि हिंसा का एक तरीका है। यदि कोई हिंसा को छोड़कर हंस का ध्यान करता है अर्थात् 'श्वास पर ध्यान' करता है तो सभी को पता चल जाएगा कि वह भगवान है। यदि हर कोई आध्यात्मिक शक्ति को बढ़ाकर, खुद शक्तिमान बनके, आत्मा की रूप से विकसित होते हैं। तो अष्टसिद्ध और अष्टैश्वर्य वश में होंगे।

जब हम संतरा देखते हैं तो क्या हम तुरंत उसे चबाते हैं कि यह बहुत स्वादिष्ट और मीठा होता है? क्या उसे हम तुरंत खाते हैं? अगर खाते हैं तो यह कड़वा और खट्टा होता है। कड़वे बीज होते हैं। अगर आप फल को इसी के कारण छोड़ देंगे तो आप उस फल को कभी नहीं खा पाएंगे। वह कड़वा छिलका ही उस फल का संरक्षण है। वह कड़वा बीज दूसरे वृक्ष को जन्म देता है। वैसे ही पत्री सर उस फल के समान है! उनकी बातें कड़वे बीज जैसी हैं! उनका व्यवहार कड़वे छिलके जैसा है। जब वे उन्हें पहली बार सुनते हैं तो किसी को भी उनकी बातें पसंद नहीं आती हैं। यदि तुम उसे ऐसे ही छोड़ दोगे, तो तुम कभी बुद्धिमान नहीं बन पाओगे। कोई दूसरे को ज्ञानी नहीं बना सकता। लेकिन अगर आप उनकी बातों का मतलब समझ लें तो आप समझदार बन सकते हैं और दूसरे को भी ज्ञानी बना सकते हैं। यह वही समझ सकता है जो पत्री जी को समझता हो।

गुरु पूर्णिमा के दिन मेरे ध्यान में पत्नी जी के बारे में एक सन्देश

पत्नी जी के बारे में जितना भी कहा जाए कम ही लगता है। उनके मुख से निकले वचन बड़े ज्ञानवर्धक होते हैं।

यह देखना आश्चर्यजनक है कि वह इस धरती पर मानवता के लिए क्या कर रहे हैं। वह रोजाना कई किलोमीटर का सफर करते हैं। किसी भी दिन उनमें कोई थकावट नहीं दिखती। इस मानवता को ज्ञान प्रदान करने की उनकी इच्छा उनमें हमेशा दिखाई देती है। जब वह ज्ञान की शिक्षा दे रहे होते हैं, तब वह एक देहधारी मनुष्य की तरह प्रतीत होते हैं, जो मानव जाति के दुखों को दूर करने के लिए इस धरती पर आये।

पर्याप्त साधना से दुख-दर्द दूर हो जाते हैं (मनुष्य लाख प्रयत्न करे तो भी दूर नहीं होते। जैसे आज दवा लेने से कल का रोग दूर हो जाता है, वैसे ही पूर्व जन्म के दुख दूर हो जाते हैं।) इसी तरह पत्नी जी भी कहते हैं कि कोई भी दुख दूर हो जाएगा।

ऐसा कहा जाता है कि यदि व्यक्ति रोगों से छुटकारा पाना चाहते हैं तो भी उसे ध्यान का अभ्यास करना चाहिए, आत्म-ज्ञान और ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

जैसा कि वशिष्ठों ने श्री राम को बताया, पत्नी जी हम सभी को ज्ञान सिखा रहे हैं। सभी को खुशी में रखते हैं। हर कोई बुद्धिमान बनने का प्रयास करता है। साथ ही उन्होंने कई पिरामिड मास्टर्स बनाए और मेडिटेशन को बढ़ावा दिया है।

पहले 'ज्ञान' श्रुति के रूप में था। उन्हें मनुष्य के लिए समझना बहुत कठिन था। श्रुति ऐसी है जैसे कोई स्त्री अपना सिर केसर से मल रही हो और बालों में उलझ रही हो। ऋषि कहा करते थे कि श्रुति को समझना बड़ा कठिन

है। वेदव्यास ने ऐसी श्रुतियों को चार वेद और अष्टादश पुराणों में विभाजित किया। उन्होंने

ऋग्वेद	—	पैल को
यजुर्वेद	—	वैशम्पायन को
सामवेद	—	जैमिनी को
अथर्वणवेद	—	सुमंत को
अष्टादशा पुराण	—	सूत को बोधित किया।

उन्होंने देश के चारों ओर इस ज्ञान को बांटा।

‘वेद’ का अर्थ है ‘ज्ञान’, व्यास ने ज्ञान को चारों ओर बांटा।

पत्नी जी ने बोलचाल की भाषा में किताबें भी लिखी हैं जिन्हें छोटे बच्चे भी समझ सकते हैं, इस ज्ञान को छोटी-छोटी अवधारणाओं में इस तरह संप्रेषित करते हैं कि हर कोई समझ सके। वे पत्नी जी व्यास के लोग लगते हैं जो इस तरह प्रचार कर रहे हैं। वे बुद्ध की तरह अहिंसा की बहुत बातें करते हैं। ऐसा कहा जाता है कि मानव जाति के सभी कष्टों का कारण मांस खाना है, अगर हिंसा को नहीं रोका गया तो लोगों में शांति नहीं होगी, शाकाहारी भोजन मनुष्य का भोजन है। बुद्ध के आने के बाद यज्ञों में बलि देना छुड़ाया गया। इसलिए पत्नी जी बुद्ध की तरह ज्ञान का प्रसार कर रहे हैं और मानव को हिंसा से दूर रख रहे हैं।

इसी तरह आदि शंकराचार्य ने अद्वैत की शिक्षा दी। उन्होंने कश्मीर से कन्याकुमारी तक तीन बार भारत का दौरा किया और कई मंदिरों का जीर्णोद्धार किया और देश में चार दिशाओं में चार पीठों की स्थापना की और ‘ज्ञान’ का प्रचार किया। उनके द्वारा रचित सभी ग्रन्थ ज्ञान के उपदेश हैं। इसी तरह, पत्नी जी न केवल भारत में बल्कि विदेशों में भी ध्यान और आत्म-ज्ञान सिखा रहे हैं। गांवों और कस्बों में कई जगहों पर पिरामिड, मेगा पिरामिड बनाए जा रहे हैं। यह उपदेश दिया जा रहा है कि प्रत्येक व्यक्ति को ध्यान करना चाहिए और आत्मज्ञानी और ब्रह्मज्ञानी बनना चाहिए। वशिष्ठ, व्यास, बुद्ध, आदिशंकराचार्य आदि जो काम कर रहे हैं, वही काम देशवासी कर रहे हैं। इससे हम समझ सकते हैं कि वह कितना शक्तिशाली है।

गुरुओं की शक्तियाँ

ऐसे अच्छे गुरुओं के पास चार प्रकार की शक्तियाँ होती हैं। उन शक्तियों से वे शिष्यों को दीक्षित करते हैं। पत्नी जी भी यही करते थे। अगर हम निरीक्षण करेंगे तो हमें पता चलेगा।

वे हैं (1) दृक दीक्षा

(2) स्पर्श दीक्षा

(3) वाक् दीक्षा

(4) मनो दीक्षा

(1) दृक दीक्षा :- इसे मीन न्याय कहते हैं। मछली अंडे डालती है और पीछे मुड़कर उन्हें तेजी से देखती है। जब मछली मां की नजर अण्डों पर पड़ती है तो अंडे बच्चे बन जाते हैं। सद्गुरु इस दीक्षा से शिष्यों को शक्ति प्रदान करते हैं और उन्हें बुद्धिमान बनाते हैं। अगर हम ध्यान दें, तो पत्नी जी कभी-कभी अपनी आँखें चौड़ी करते थे और हमारी आँखों में देखते थे। गुरु की कर्णामयी दृष्टि हम पर पड़ती है, और जब गुरु में कर्णा होती है, तो हम अज्ञानता का जीवन छोड़कर ज्ञान के प्राणी बन जाते हैं।

(2) 'स्पर्श दीक्षा':- इसे विहंग न्याय कहा जाता है। एक चिड़िया अंडे देती है और उन्हें सेती है और अपने पंखों के स्पर्श से उन्हें बच्चों में बदल देती है। साथ ही सद्गुरु अपने हाथ के स्पर्श से शिष्यों को शक्ति प्रदान करते हैं। इसलिए पत्नी जी सभी को 'हाथ मिलाते' थे।

(3) 'वाक् दीक्षा' :- इसे भ्रमर कीटक न्याय कहते हैं। भ्रमर एक कीट लाता है जो पत्तियों को खाता है और उसे अपने घोंसले में रखता है, और दरवाजे के पास जाकर झनझनाहट की आवाज करता है। घोंसले की कीट भ्रमर को ही देखते धीरे-धीरे भ्रमर बन जाता है। फिर पत्तों का रस लेना बंद कर देती है और

फूलों का रस प्राप्त करता है।

हम भी ध्यान में आने से पहले कीड़ों की तरह हैं। हम अज्ञानवश मांस खा रहे हैं। उपदेशक के उपदेशों को सुनकर हम भी आत्मज्ञानी हो जाते हैं और तितलियों के समान हो जाते हैं। हम मांस न खाकर ज्ञान बढ़ा रहे हैं। आज हम कुछ लोगों को बता रहे हैं, पत्नी जी जितना नहीं। लेकिन कुछ ज्ञान के साथ। काश हमारे पास इतनी शक्ति होती! यही पत्नी जी की ताकत है। वही हमें शिक्षक बनाते है।

(4) 'मनो दीक्षा' :- इसे 'कछुआ संकल्प' कहते हैं। कछुआ एक जगह अंडे डालके भोजन के लिए जाता है। बादलों में गड़गड़ाहट की आवाज सुनकर कछुआ बादलों की आवाज पर संकल्प करता है, 'की मेरे अंडे बच्चों में बदलना है।' तुरंत अंडे बच्चों में बदल जाते है। ऐसे ही सद्गुरु जहां भी होते हैं शिष्यों की रक्षा करते हैं।

मैंने अपने मामले में इस चौथी दीक्षा का अनुभव किया। पत्नी जी कहते हैं, 'आत्म-ज्ञान प्राप्त करने और बढ़ने के लिए, कोई अभिमान नहीं होना चाहिए, अभिमान आत्म-ज्ञान के लिए सबसे बड़ी बाधा है।' 2005 में जब मैंने ध्यान अभियान शुरू किया था तो लोग एक बार में नहीं आते थे। मैंने वहां के कार्यकर्ताओं से कहा 'कोशिश करते तो लोग आते, तुमने कोशिश नहीं की', मैं अहंकार से बहुत कठोर होकर बोली। तब दोपहर के २ बज रहे थे। हम खाना खाकर बात कर रहे थे। तभी पत्नी जी का फोन आया। 'क्लास कैसी थी, मैडम?' उन्होंने पूछा। 'बहुत बढ़िया सर' मैंने कहा। उन्होंने तीन बार पूछा, मैंने तीन बार वही कहा। सर एक मिनट के लिए चुप रहे।

उनका संदेश तुरंत मेरे अंदर प्रतिध्वनित हुआ। मैं समझ गयी कि 'मैं एक ऐसा ब्रह्मज्ञानी हूँ.. 20 साल पहले मैंने 6 घंटे की यात्रा की और दो लोगों को ध्यान सिखाया और आप इतने महान हैं? दस लोग काफी नहीं हैं? आपकी शक्ति के कारण लोग आपके सामने हैं। एक साधक सब कुछ स्वीकार करने में

सक्षम होना चाहिए। सर, वह जहां भी है, वह सब कुछ जानता है। वह जान सकता है, उसके पास वह शक्ति है।

और यदि मुझ में घमण्ड बढ़ता है, तो मैं न बढ़ूंगा। इसलिए मुझे यह बताया गया था। मेरे लिए फोन कॉल ऑस्ट्रेलिया से आया था। इससे सर कि शक्ति को बहुत अच्छी तरह समझा जा सकता है। और हमें ऐसे अच्छे गुरु की शिक्षा को हमेशा सुनना और मनन करना चाहिए।

हम, जो कर्मधारी बनकर आए हैं, हमें पत्नी जी ध्यान से माता के गर्भ से आये मांस पिंड को मंत्र पिंड के रूप में बदलाकर हमें ज्ञान पुत्र जैसे बनाए जा रहे हैं। इसलिए ऐसे अच्छे गुरु को हम कोटि कोटि प्रणाम करें तो भी उनका ऋण नहीं चुका सकते।

‘मानव को दानव बनानेवाले’ हिंसा है।

‘मानव को दिव्य बनानेवाले’ हंस है।

- ब्रह्मर्षि पत्नी जी

पत्री जी में देखा माँ का प्यार

पत्री जी में मैंने हमेशा एक पिता और एक शिक्षक देखा, लेकिन एक घटना के साथ मैंने उनमें एक माँ का प्यार भी देखा। एक बार, राघवराव जी ने व्हाइटफ्रील्ड, बैंगलोर में तीन दिनों का मौन ध्यान किया। उस क्लास में पत्री जी आए। पत्री जी ने आकर एक घंटे की क्लास ली। वह जा रहे थे तो सब भी गए। राघवराव जी ने भी कहा 'क्या हम भी चलें?' मैंने कहा, 'तुम जाओ, रात दस बजे तक ध्यान है।' मैं ध्यान के बाद आऊंगी।

राघवराव जी पत्री जी के साथ गए। 10 बजे राघवराव जी ने गाड़ी भेजी और संदेश भिजवाया कि पत्री जी जा रहे हैं, जल्दी आइए। जैसे ही मैं निकलनेवाली थी, पत्री जी बाहर आए और कार में बैठने ही वाले थे कि उन्होंने मुझे देखा और कहा, 'अभी आये है, मैं आप को खाना खिलाकर जाऊंगा' ऐसे कहते वे डाइनिंग टेबल के पास मुझे ले गए। उस समय तक सबको खाना पकाकर सब को खिलाकर, सर भी खाना खाने के बाद जब निकल रहे थे, मुझे भोजन खिलाने के लिए वापस आये।

जब मैंने मेज पर जाकर बर्तनों को देखा तो वे सब खाली थे। फिर पत्री जी ने तुरंत कहा, 'सब कुछ खत्म हो गया। मैं तुम्हें खिलाना चाहता था; मैं तुम्हें जल्दी से जल्दी पकाकर खिलाऊंगा' और फिर खाना बनाकर मेरे लिए निकल गए। तब तक रात के 99 बज चुके थे। बारिश हो रही थी। उन्हें कर्नाटक से आंध्र प्रदेश जाना है। हालाँकि, उन्होंने मेरे लिए खाना बनाया और चले गए! मुझे यह समझ आ गया। यानी अगर वे एक शब्द देते हैं, तो वे इसे करेंगे चाहे वह कितना भी कठिन क्यों न हो। शिष्यों को बच्चे जैसे देखभाल करते हैं। मैं हमेशा सोचती हूँ की सर को ध्यान करनेवाले, और ध्यान प्रचार करनेवालों से बहुत प्यार है। और उन के लिए कितने भी कष्ट हो वे सहन कर लेते हैं।

मैंने उस दिन सर में मातृत्व को देखा। माँ ही बच्चों के भूख मिटा सकती है। बाहर से आकर बच्चे की भूख को सबसे पहले माँ ही पहचानती हैं। उस दिन मैंने पत्नी जी में माँ का प्यार देखा। मैंने सोचा, 'मैं अपने मन की भावना को पत्नी जी को कैसे बताऊँ?' जब अगले दिन पत्नी जी ने मुझे फोन किया और कहा, 'बताओ मैडम,' मैंने कहा, 'सर! आपने मुझे दोबारा जन्म दिया है और पिता बन गए हैं। ज्ञान दिया है और शिक्षक बन गए हैं। आपने रात का खाना बनाया है और माँ बन गए हैं। इसके बाद मैं आप में और कितने रूप देखूँगी? उन्होंने मुस्कुरा कर फोन रख दिया।

प्रजा का अहित करना पाप है! यदि आप दूसरों का भला करते हैं तो यह एक पुण्य है! अच्छा करोगे तो मुक्ति है!

-ब्रह्मर्षि पत्नी जी

परमात्मा की कृपा - गुरु की कृपा

दैवीय कृपा:- हम इस धरती पर सत्य और अपनी वास्तविक स्थिति को जानने के लिए आए हैं। यह सारी सृष्टि ईश्वर की रचना है। ईश्वर की रचना में 84 लाख जीव हैं।

चौरासी लाख जीवों में से मनुष्य जन्म ही परमात्मा को जानने का एकमात्र जन्म है। मनुष्य जन्म के तुरंत बाद भी कोई नहीं जान सकता। करीब 300 से 350 जन्मों तक जानने की इच्छा भी पैदा नहीं होती। उस परमात्मा को कौन नहीं जान सकता। उन्हें एक अच्छे शिक्षक की जरूरत है। जिसे एक अच्छा शिक्षक मिल जाता है, वही एक अच्छा शिक्षक पाता है जो सर्वोच्च को प्यार करता है। अगर सद्गुरु हमारे जीवन में आए हैं, तो हम ईश्वर की कृपा से हैं। यदि ईश्वर की कृपा हम पर न हो तो हम उसे गुरु के आगे नहीं पहचान सकते।

सद्गुरु माने सत्य कहने में सक्षम होना चाहिए और सत्य बोलना मतलब समाज के खिलाफ जाना है। सभी गुरु मूर्ति पूजा बताते हैं लेकिन सद्गुरु आत्म पूजा बताते हैं। बाकी गुरु कर्मकांड बताते हैं। लेकिन सद्गुरु कर्म रहित होने का मार्ग सिखाते हैं। क्योंकि कर्म है तो जन्म है। जब जन्म होता है तब ही दुःख होता है। लेकिन कर्म के बिना जन्म नहीं होता। इन सभी को सद्गुरु ही जानते हैं।

काश आज हमें पत्नी जी जैसा अच्छा शिक्षक मिल जाता! हम न केवल इस जीवन में बल्कि पिछले जन्मों में भी ईश्वर को जानने के लिए उत्सुक होते। यह ईश्वर की कृपा है कि हमें पत्नी जी जैसा अच्छा शिक्षक मिला है। जो कोई भी जीव हिंसा नहीं करते, हर किसी से प्रेम और पवित्रता से रहते हैं, उन पर ईश्वर की कृपा है।

सद्गुरु कृपा: जब ईश्वर की कृपा से एक अच्छा गुरु हमारे जीवन में आता है, तो हमें गुरु के वचन को ईश्वर के वचन के रूप में समझने में सक्षम होना चाहिए। एक अच्छा गुरु शिष्यों को कर्म करने के लिए कभी नहीं कहता। तभी पत्नी जी कहते हैं कि हमें पाप और पुण्य दोनों नहीं चाहिए... सत्य दर्शन हमारे लिए महत्वपूर्ण है। हम मांस खाने से परहेज करते हैं और पाप कर्मों से

दूर रहते हैं। ध्यानयज्ञ किए जाते हैं और सत्य कर्मों को प्रोत्साहित किया जाता है। सत्य कर्मों से ही सत्य दर्शन आत्म दर्शन प होता है इसलिए हम से ध्यान यज्ञ करवाते है। सद्गुरु हमेशा इस सृष्टि के कल्याण के लिए ही सोचते हैं।

भगवान कभी हमसे सीधे बात नहीं करते हैं। गुरु के द्वारा ही सब कुछ बताया जाता है। यदि वे सब कुछ करते तो इतने अवतार और इतने सारे गुरु धरती पर न आते। इसलिए वह गुरुओं को धरती पर भेजता है। इसलिए इसे 'गुरु साक्षात परब्रह्मा' कहा जाता है।

हमें महसूस करना चाहिए कि 'जो गुरु कहते हैं वही भगवान का कहना है। गुरु हमें रास्ता दिखाने आते हैं। हमें खुद ही सारा काम करना होता है। पत्नी जी ने हमें ज्ञान के बीज दिए हैं। वे अंकुरित होने के लिए, हमारे शरीर के क्षेत्र में ध्यान का पानी डालकर, स्वाध्याय के खाद डाल के, सांगत्य की कृषि से ही आत्मज्ञान की फसल आएगी। वह फसल को लोगों को बांटने से ब्रह्म ज्ञान के महा वृक्ष को प्राप्त करेंगे। पत्नी जी कहते हैं, 'यदि हम इसे साझा करते हैं, तो यह बढ़ता है, यदि हम इसे छिपाते हैं तो यह लूट जाएगा।

सद्गुरु के साथ सांसारिक मामलों, समस्याओं और लाभों के बारे में कभी बात न करें। उनके द्वारा कही गई आध्यात्मिक बातों, ध्यान और स्वाध्याय को जानने के लिए हमें प्राप्त ज्ञान को साझा करना चाहिए। तभी गुरु की कृपा मिलेगी।

सभी शिक्षक सागर की लहरों की तरह होते हैं। लहर कैसे उठती है और किनारे पर आ जाती है और फिर से सागर से मिल जाती है! गुरु भी धरती पर अपने कार्य के लिए आते हैं और जब कार्य हो जाता है तो वे परमात्मा में विलीन हो जाते हैं। इसलिए जो लोग गुरु के पृथ्वी पर रहते हुए उनके साथ रहते हैं और उनकी शिक्षाओं को सुनते हैं और उन सभी को पुस्तक रूप में परिवर्तित करते हैं, वे सच्चे आध्यात्मिक मार्ग पर चल सकते हैं।

जीवित गुरु से सीखे बिना किसी की बात सुनने वाले सही लक्ष्य की ओर नहीं बढ़ सकते। इसलिए जो लोग गुरु के साथ सहवास करते हैं वे बहुत भाग्यशाली होते हैं। इसलिए गुरु के मार्ग पर चलने वाले सभी उनकी कृपा के पात्र होंगे।

इच्छा - संघर्ष

जन्म के बाद बचपन से लेकर बुढ़ापे तक हर किसी के जीवन में लालसाओं का संघर्ष होता है। बचपन में खेलने और शरारत करने की इच्छा होती है लेकिन बड़े-बुजुर्ग कहते हैं 'पढ़ो, दंगा मत करो, ऐसे बनो, वैसे बनो'। तब उन से संघर्ष करना पड़ता है।

दोस्तों के साथ घूमने-फिरने, सिनेमा देखने, सैर-सपाटे पर जाने, जीवन का आनंद लेने की इच्छा होती है लेकिन जब बड़े उन्हें रोकते भी हैं तो उनके साथ लड़ाई कम उम्र में ही सभी जिम्मेदारियों को पूरा करने, अच्छी कमाई करने, अच्छा घर बनाने, अच्छी कार खरीदने, बच्चों को अच्छी शिक्षा देने और सबसे बेहतर बनने के लिए होती है। लेकिन हमें उन सभी को पूरा करने के लिए हर समय संघर्ष करना पड़ता है।

भले ही वर्धाक्यम में जिम्मेदारियां पूरी हो गई हों, लेकिन वे कहते हैं, 'हर किसी को मेरी बात माननी चाहिए। जैसा मैं कहता हूं, उन्हें वैसा ही करना चाहिए', और वह अपनी वरिष्ठता बनाए रखना चाहता है, भले ही वह इसे खो रहा हो। इस के लिए संघर्ष करते जीवन भर दुखी रहते हैं।

जहाँ तक इन इच्छाओं और संघर्षों का संबंध है, वे अज्ञानता में विद्यमान हैं। लेकिन जब आप अज्ञानता से बाहर निकलेंगे और समझदार बनेंगे, तो आपको पता चल जाएगा कि यह तड़प और संघर्ष क्या होना चाहिए और इसका उपयोग कैसे करना चाहिए।

यहां तक कि जो लोग आध्यात्मिक पथ में प्रवेश कर चुके हैं, उनके लिए भी ये लालसाएं और संघर्ष अपरिहार्य हैं। क्योंकि नए में जो ध्यान शुरू करता है, उसमें ध्यान करने की इच्छा होती है। लेकिन हमें उस मन से लड़ना है जो विचारों से भरा है। साधना के बाद सबके साथ बांटने की इच्छा होती है। यह सत्य जानने के बाद कि 'मूर्ति ईश्वर नहीं है, आत्मा ही ईश्वर है' यह बात सभी को बताने की इच्छा उत्पन्न होती है। यह कहने की इच्छा है, 'आत्मा, यानी भगवान, पूजा में नहीं खोजे जा सकते। ध्यान भगवान को खोजने का तरीका

हैं ।

पशु-पक्षियों को सताना और मांस खाना पाप है, इसलिए सभी के मन में मांस छोड़ने की इच्छा होती है। लेकिन सबको बताने और सबको मनाने के लिए हमें बहुत संघर्ष करना पड़ता है अगर हम सबको माँस छोड़ाना और ध्यान करना चाहते हैं।

इस कलियुग में लोगों में मूर्खता और मूर्खता की भरमार है। यह सोचना कि 'वह जो करता है वह सही है, वह सब कुछ जानता है' ।

साथ ही यह सोचना भी 'मूर्खता' है कि 'जो सब करते हैं वही ठीक है, सबको करना चाहिए' । जो अज्ञान में हैं और जो अंधविश्वास में हैं, यदि आप उन्हें बदलने की कोशिश करते हैं, तो आपको बहुत संघर्ष करना पड़ता है।

सामान्य जीवन में तनाव और संघर्ष के कारण शरीर और मन की थकान के कारण शरीर बीपी और मधुमेह जैसी बीमारियों से ग्रसित हो जाता है। लेकिन जो लोग आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश करते हैं, उनके लिए यह तड़प और संघर्ष संतुष्टि, और खुशी लाता है।

लोगों में अज्ञानता को दूर करने के लिए पत्री जी ३० साल से बहुत मेहनत कर रहे हैं। और वे सभी जो उनके पदचिन्हों पर चले, ध्यान और सत्य को सीखे और ज्ञानी बने और संसार के कल्याण के लिए गुरु के पदचिन्हों पर चलने का प्रयास कर रहे हैं। जिस मिशन को लेकर पत्री जी लोगों के बीच आए थे, उसी मिशन को लेकर उनके शिष्य काम कर रहे हैं। पिरामिड मास्टर्स की इच्छाएं और संघर्ष दुनिया के कल्याण के लिए हैं! ऐसे नहीं रहनेवाले पिरामिड मास्टर्स नहीं कहलाते है।

पत्री जी का आशय सभी को ज्ञानी और आत्मज्ञानी जैसे परिवर्तित करने का है, इस के लिए उन्हें अपना सर्व श्रेष्ठ करना चाहिए। ऐसे कहते हुए, कोई भी ऐसे नहीं सोचना है कि 'ब्रह्माण्डने मुझे क्या दिया है' 'ब्रह्मांड को मैंने क्या दिया है?' ऐसे सोचना है। कभी भी अपने सुख खोने के लिए नहीं बोलते। हम सुख भोगते दूसरों को भी सुखी देखने को कहते है।

मानव का मतलब

शरीर, मन और आत्मा ये तीनों मिलाके मानव बनता है।

शरीर :-

शरीर माता-पिता से मिलता है। यह शरीर पंचभूतों से मिलकर बना है। इस शरीर में 5 ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। आत्माओं के रूप में, हम अपने आत्म-सुधार के लिए जीवन के सबक सीखने के लिए अपने उपहार के साथ जो भी शरीर चाहते हैं उसे चुनते हैं। पहुंचने के बाद हम अज्ञान के कारण 'मैं शरीर हूँ' सोचते हैं। जब तक हमें 'मैं आत्मा हूँ' का ज्ञान नहीं हो जाता, तब तक हम इस भ्रम में रहते हैं कि 'मैं शरीर हूँ'। लेकिन एक नश्वर वस्तु में यानी इस शरीर में एक और शाश्वत यानी आत्मा है। अगर इस शरीर को भोग में रखा जाए तो रोग आता है, योग में रखा जाए तो ज्ञान आता है।

मन उन माता-पिता से आता है जो हमें पालते हैं, जिस समाज में हम बड़े होते हैं। मन मांस और खून से नहीं बना है। मन 'प्राणशक्ति' नामक सूक्ष्म प्रकाश से भरा हुआ है।

मन का काम है सभी को स्वीकार करना, हम इसे पसंद करें या न करें, हमारा मन जीवन भर हमारे साथ रहता है।

बहुत से लोग कहते हैं, मेरा मन अच्छा नहीं है। मन अच्छा नहीं है, इस पर दुखी होने की बात नहीं है, हम मन को हटा नहीं सकते, हमें इसे बेहतर बनाना है। इसे बेहतर बनाने का तरीका 'ध्यान' है, हमारा बुरे विचारों और बुरी भावनाओं से मन दूषित हो सकता है।

सपने देखना और कामना करना मन के लिए बहुत अधिक है। मन वस्त्र के समान है। कंटीले तार पर गिरे कपड़े को जरा सा खींचने से कपड़ा फट जाएगा। इसलिए परिधान को बहुत सावधानी से निकाला जाता है। इसी तरह मन को एक बार में नहीं बदला जा सकता है। 'ध्यान' करने से धीरे-धीरे परिवर्तन होता है। कपड़ा एक बार में गायब नहीं होता है। जिस प्रकार एक-एक

कदम चलने से कपड़े का टुकड़ा दूर हो जाता है, उसी प्रकार 'ध्यान' द्वारा प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा करके मन के मैल दूर हो जाते हैं और अंत में पूरी तरह से निकल जाते हैं।

दौड़ना शरीर के लिए कठिन होता है। मन का एक जगह स्थिर रहना कठिन है। मन विमुख हो जाना चाहिए। यह 'ध्यान' के द्वारा ही संभव है, मन एक बगीचे की तरह है, बगीचे में अन्य व्यक्ति और अन्य विषयों का प्रवेश होने से एक सैनिक की तरह रक्षक बनना चाहिए।

कोई मातम नहीं होना चाहिए। यदि मातम हों तो बगीचा विकसित नहीं हो सकता। साथ ही मन को ही यह सुनिश्चित करना चाहिए कि बेकार चीजें बगीचे में प्रवेश न करें। भय और चिंता जैसे मातम से मुक्त रहना चाहिए। मन में ऐसी बातें हों तो 'आत्मा' नहीं बढ़ता।

अगर हम सुखी जीवन जीना चाहते हैं तो हमें नकारात्मक विचार नहीं रखने चाहिए। मनुष्य एक दिन में 60,000 विचार सोचता है। अजीब बात यह है कि इसमें से 90 प्रतिशत अतीत के विचार हैं। हमारे विचार हमारे कर्म हैं। हमारे कार्य हमारे परिणाम हैं। यदि हम अपने मन को बदलने के लिए समर्पित प्रयास करते हैं, तो जीवन धीरे-धीरे साधारण से असाधारण की ओर एक कदम बढ़ा देगा। यदि हम अतीत के कैदी नहीं हैं, तो हम भविष्य के निर्माता होंगे।

कम्पास उत्तर की ओर इशारा करता है चाहे नाव किसी भी दिशा में जा रही हो। इसी तरह, ध्यान करने वालों का मन दुनिया के मामलों की परवाह किए बिना 'आत्मा' पर रहता है।

मन को कमजोर करने वाली किसी भी बड़ी इच्छा को छोड़ दें। मन में शांति न हो, स्थान बदलने से भी शांति न हो, 'आत्मा' पर ध्यान देने से ही मन को शांति मिलती है। सांसारिक चीजों से, दिमाग 'जीरो' है तो हम 'हीरो' बनते हैं, अगर दिमाग 'हीरो' है तो हम 'जीरो' हैं।

जब मन निकल जाएगा तब मन भागवत स्वरूप ही हो जाता है।

निर्मल मन ब्रह्म हो जाता है। मन को संसार की ओर मोड़ना 'बंधन' है। आत्मा की ओर मोड़ना 'मोक्ष' है। इसी प्रकार आत्मा की ओर मुड़ा हुआ मन हर चीज से मुक्त हो जाता है, भले ही वह हर चीज में क्यों न हो। जैसे कीचड़ में कमल कीचड़ से नहीं चिपकता, आत्मा की ओर मुड़ा हुआ मन हर चीज में मौजूद होता है, चाहे कोई कितना भी कर्म कर ले, वह किसी चीज से नहीं चिपकता।

तल स्थिर जल में भी दिखाई देता है। साथ ही यदि 'ध्यान' के माध्यम से मन को स्थिर किया जा सकता है, तो हम आत्मा को जान सकते हैं, जब तक मन व्यक्ति को खोजता रहता है, तब तक 'आत्मा' बाहर नहीं आती। यदि मन हमेशा बाहरी चीजों से जुड़ा रहता है, अगर उसमें से दुर्गंध आती है, तो वह बुरे विचार पैदा करेगा। बाहरी चीजों से ध्यान हटाने से मन शांत होता है। ऐसा मन धीरे-धीरे 'परमात्मा' दर्शन, यानी 'ब्रह्म की अनुभूति' की ओर ले जाता है। शंकराचार्य ने 'विवेक चूड़ामणि' में कहा है कि इससे जन्म और मृत्यु से मुक्ति मिलेगी। शुद्ध मन कल्पवृक्ष बन जाता है। अशुद्ध मन हमेशा भगवान के दर्शन पर निर्भर रहेगा। इसलिए, मन को ध्यान के माध्यम से अंतर्मुखी होना चाहिए।

पूर्णात्मा और परमात्मा से 'आत्मा' आती है। परमात्मा प्रत्येक जीव में सूक्ष्म रूप से 'आत्मा' है। 'आत्मा' परमाणु से भी सूक्ष्म है और जीवों (शरीरों) में प्रविष्ट होकर शरीर को जीवन प्रदान करता है। 'आत्मा' का कोई मृत्यु और जन्म नहीं है। भूख और प्यास नहीं। कोई शोक या जुनून नहीं है।

।मृत्यु और जन्म शरीर के धर्म हैं।

।भूख और प्यास जीवन के धर्म हैं।

।शोक और वासना मानसिक गुण हैं।

इन छः के अभाव से आत्मा को 'षडूर्मि रहितम' कहा गया है। शरीर जो कुछ भी करता है उसका कारण 'आत्मसक्त' है। शरीर के बिना 'आत्मा' स्वयं को सुधार नहीं सकती। 'आत्मा' बीज के समान है और 'शरीर' वृक्ष के समान है। बीज जितना मजबूत होता है, उससे पेड़ भी उतना ही मजबूत होता है। इसी प्रकार जब मन का महत्व कम हो जाता है और 'आत्मा' शक्तिशाली होती है तब शरीर कल्पतरु बन जाता है। जब 'आत्मशक्ति' कमजोर होती है तो

शरीर अस्वस्थ हो जाता है।

संसार की किसी भी वस्तु से बड़ी यदि कोई शक्ति है तो वह केवल 'आत्मशक्ति' है। 'आत्मशक्ति' सोये हुए को जगाती है। अलौकिक शक्तियों को बाहर लाती है। 'आत्मा' का उतना ही महत्त्व है जितना शरीर के लिए 'प्राण' का। 'आत्मा' केवल संवेदनाओं को जानती है। आत्मा को इन्द्रिय ज्ञान से नहीं जाना जा सकता।

इसे ज्ञान से ही प्राप्त करना होता है। इसलिए इसे 'आत्मज्ञान' कहते हैं।

यह 'आत्मा' है जो मन को प्रस्फुटित करती है, ज्ञान को प्रकाशित करती है और शरीर को अनुप्राणित करती है। इसकी कई शक्तियाँ हैं। कई महात्मा और सिद्ध हैं। उन्हें महसूस करने के लिए 'ध्यान के अभ्यास' की आवश्यकता होती है। सामान्य आँखों से जो देखा जा सकता है वह सीमित है। 'ज्ञान चक्षु' से जो देखा जा सकता है वह असीम है। इसके लिए गहन ध्यान अभ्यास की आवश्यकता होती है। तीसरा नेत्र खोल देना चाहिए। जो भी तीसरा नेत्र खोलता है वह भगवान बन जाता है। 'आत्मा' को जानना 'ब्रह्म' को जानना है।

संसार में सब कुछ नाशवान है, परन्तु 'आत्मा' ही अविनाशी है। एक ध्यानी को पता होना चाहिए कि 'आत्मा' परब्रह्म है। आत्मा के बारे में ये तीन बातें सभी को पता होनी चाहिए।

(1) आत्मा शाश्वत है। (2) वह 'आत्मा' है न कि शरीर। (3) हर एक जीवित प्राणियों में "आत्मा" व्याप्त है।

जब तीव्र 'ध्यान का अभ्यास' हमारे अंदर उच्च विचार उत्पन्न करता है, जब आदर्श बनता है तो हमारे विचार सीमाओं को पार करते हैं, बंधनों को तोड़ते हैं और हमारा 'चैतन्य' यानी आत्मा सभी दिशाओं में फैलता है। हमारे अंदर जो भी ऊर्जाएं, प्रतिभाएं और ज्ञान सुप्त हैं, वे एक बार जाग उठेंगी।

ध्यान कि जरूरतें

ध्यान के लिए विशेष रूप से (1) विश्वास, (2) श्रद्धा, (3) अभ्यास, (4) उत्साह की आवश्यकता होती है।

(1) विश्वास:- ध्यान कई प्रकार के होते हैं। लेकिन क्योंकि हम एक अच्छे गुरु द्वारा बताई गई साधना में विश्वास करते हैं, इसलिए हम उस साधना को अच्छे से करते हैं। एक अच्छा शिक्षक केवल हमारे मेधावी कर्मों और अच्छे कर्मों के कारण ही मिल सकता है। ऐसे सद्गुरु की साधना बहुत कठिन होगी! ऐसे अच्छे गुरु सत्य बोलते हैं, सत्य में रहते हैं और सत्य की ओर हमारा मार्गदर्शन करते हैं।

जब हमें अपनी साधना पर विश्वास हो जाता है तो हम इस विचार पर आ जाते हैं कि “इस साधना से ही मुझे ज्ञान प्राप्त हो सकता है” और साधना को लगन से करते हैं। जितना अधिक हम इसे पसंद करते हैं, उतना ही हम इसका अभ्यास कर सकते हैं। गौतम बुद्ध ने पत्नी जी द्वारा ‘श्वास पर ध्यान’ नामक कई प्रकार के ध्यान किए और अंत में सभी को यह ‘आनापानसती’ सिखाया कि यह सबसे महान है। ध्यान का अर्थ है मन को खाली करना। मन खाली हो जाए अर्थात् श्वास पकड़ा जाना चाहिए क्योंकि अन्य सभी साधनाओं में मन काम करता है।

‘श्वास पर ध्यान’ शीघ्र ही मन को शून्यता में ले जाता है। इसलिए हमें जो करना है उस पर विश्वास करना होगा।

(2) श्रद्धा :- लगन से किया गया कोई भी कार्य बहुत ही कुशल होता है। शिक्षा में भी, ‘ध्यान से पढ़ो!’ कहा जाता है जो भी काम शुरू किया जाए उसे मन लगाकर किया जाए तो बहुत अच्छा रहेगा। किसी भी काम में अच्छे परिणाम तभी मिलते हैं जब ध्यान बहुत होता है। भगवद गीता में कहा गया है कि श्रद्धा तीन प्रकार की होती हैं। वे हैं 1) तामसिक श्रद्धा 2) राजसिका श्रद्धा 3) सात्विक

श्रद्धा ।

ऐसा कहा जाता है कि ये प्रसवोत्तर संस्कारों कि प्रभाव से और इस जीवन में किए गए प्रयासों के प्रभाव के कारण होते हैं। सभी मनुष्यों को उनके ध्यान के प्रकार के अनुसार समान परिणाम मिलेगा। साधना प्राप्त करने या ज्ञान बढ़ाने के लिए 'सात्विक श्रद्धा' आवश्यक है। 'सात्विक श्रद्धा' 'आत्मा' की स्थिति तक पहुंचने का एकमात्र तरीका है। इसलिए गीता में ऐसा कहा है।

श्लोक : श्रद्धावान लभते ज्ञानम् तत्परः संयतेन्द्रियः :

ज्ञानम् लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ! (भ.गी 4-39)

तामसिक श्रद्धा और राजसिक श्रद्धा साधना की ओर नहीं ले जाते हैं। कोई आत्मज्ञान नहीं है। इसलिए, एक साधक के लिए सात्विक ध्यान आवश्यक है, इसलिए कहा जाता है कि हर कोई सात्विक ध्यान का सहारा लेता है और अपनी आध्यात्मिक गतिविधियाँ करता है।

3) अभ्यास:- कोई भी नौसिखिया जिसने ध्यान शुरू किया है वह ध्यान नहीं कर सकता है। ध्यान में बैठने में शरीर साथ नहीं देता। यदि आप स्वाभाविक रूप से अपनी आंखें खोलते हैं, तो विचार नहीं आएंगे। जब आप अपनी आंखें बंद करते हैं तो आपके मन में कई तरह के विचार आते हैं। ऐसा लगता है 'आँख कब खोलेंगे'। लेकिन रोजाना बैठने से विचार धीरे-धीरे कम होने लगते हैं और मन और शरीर ध्यान का अभ्यास करने लगते हैं।

मन चंचल होता है और उसे वश में करना बहुत कठिन होता है। लेकिन 'श्वास पर ध्यान' का अभ्यास करने से मन धीरे-धीरे समर्पण कर देता है। जैसे एक छोटी सी बाधा कितनी ही बड़ी क्यों न हो उसके सामने समर्पण कर देना, यदि आप 'श्वास पर ध्यान' रखेंगे तो मन धीरे-धीरे समर्पण कर देगा।

सीखने का एक उदाहरण: एक गांव में एक शिक्षक हुआ करते थे। वह कुछ दिनों के लिए चुनाव प्रचार के लिए निकले थे। उसके लिए एक गांव में भोजन की व्यवस्था की गई थी। उस घर में जिसने भी इसकी व्यवस्था की

उसने गुरु के शिष्य को बुलाकर पूछा, 'गुरुजी कैसी सब्जी खाते हैं?' उसने पूछा। छात्र ने कहा 'मुझे सभी सब्जियां पसंद हैं, लेकिन करेला?' और फोन काट दिया गया। उसने करेले से सारे व्यंजन बना दिए। करेला फ्राई, करेला पचड़ी, करेला पुलसु आदि करेले से बनाए गए। शिक्षक खाने के लिए बैठ गया और बर्तन का ढक्कन हटा के सभी देखा।

सभी व्यंजन करेले से बनाये गए। दूसरा कुछ भी नहीं है। इसलिए करेले की करी ही खाया है।

अगले दिन अगले दरवाजे में कार्यक्रम के दौरान दरबान ने शिक्षक से कहा, 'क्या। शिक्षक को करेला पसंद है, इसलिए हमने इसे सभी के साथ बनाया है।' फिर उन्होंने सभी प्रकार के करेले भी बनाए। उस दिन भी वही खाना था जो गुरु ने बनाया। इस प्रकार एक सप्ताह तक लगातार गुरु के लिए करेले से पकवान बनाए गए। क्योंकि गुरु जी रोज दूसरी करी के साथ करेले की सब्जी खाते थे, आदत हो गई थी। वैसे ध्यान भी पहली बार में आदत नहीं बनता है। भले ही यह कठिन हो, यदि आप प्रतिदिन कुछ समय के लिए अभ्यास करते हैं, तो यह आपकी आदत बन जाएगी।

इसलिए ऋषि पतंजलि ने कहा 'अभ्यास, वैराग्याभ्यां तन्निरोधः'। इसका अर्थ है कि 'वैराग्य सीखने से मन को वश में किया जा सकता है'। इसलिए मन को परमात्मा में स्थिर करने के लिए 'प्रशिक्षित' होना पड़ता है। प्रतिदिन ध्यान का नियमित अभ्यास, ध्यान के अभ्यास को एक आदत बना देगा। इसलिए ध्यान के लिए 'अभ्यास' की आवश्यकता होती है, ऋषि वशिष्ठ ने श्री रामचंद्र को यह भी सिखाया कि 'आत्म-ज्ञान' के लिए 'अभ्यास' करना चाहिए। कारण यह है कि 'आत्मज्ञान' से सब दुःख दूर हो जाते हैं और आनंद की प्राप्ति होती है। इसलिए वशिष्ठ महर्षि कहते हैं कि अभ्यास से आत्मज्ञान को प्राप्त करना है।

(4) उत्साह:- योग का अभ्यास करने वाले को उत्साही होना चाहिए। वह ऐसा व्यक्ति रहा होगा जो किसी भी तरह की मुसीबतों से परेशान नहीं होता।

उत्साह से जो भी काम होगा, वह बहुत जल्दी हो जाएगा। काम करते समय जितना 'ध्यान' जरूरी है, उतना ही 'उत्साह' भी जरूरी है, इसलिए बड़े-बुजुर्ग कहते हैं, 'रोने से बेहतर है कि कुछ न किया जाए'। इसलिए न केवल सांसारिक गतिविधियों में बल्कि आत्म-साक्षात्कार में भी 'उत्साह' होना चाहिए। परमात्मा को जानने की इस साधना में साधक की कितनी 'श्रद्धा' है। आप 'उत्साह' दिखाएंगे तो प्रकृति साथ देगी। वास्तविक आलस्य अभ्यास करने में काम नहीं आता।

जब ऐसा आलस्य हो तो हमें यह देखना चाहिए कि हम जो भोजन करते हैं उसमें तमोगुण बढ़ाने वाली चीजें हैं या नहीं और तमोगुण बढ़ाने वाले भोजन का सेवन बंद कर देना चाहिए। खासतौर पर संग्रहित वाले। सड़ी-गली, किण्वित, पकाकर फ्रिज में रखी और ठंडी चीजें खाएंगे तो तमोगुण बढ़ जाएगा। बहुत ज्यादा खाना और बहुत ज्यादा सोना भी वासना के लक्षण हैं और अनचाही चीजें करने से भी ध्यान की ओर ध्यान कम जाता है। शारीरिक थकान के कारण साधना नहीं हो पाती। अतः विक्षेप कम होने से 'ध्यान' करने की प्रेरणा आएगी। 'आत्मज्ञान' बढ़ाने वाली पुस्तकें पढ़ने से 'उत्साह' और ध्यान करने की इच्छा भी मिलती है।

ध्यान अभ्यास में बढ़ने के लिए

(1) जांच (2) आस्था (3) आलोचना (4) विश्लेषण (5) विवेक (6) वैराग्य (7) विनम्रता ध्यान - अभ्यास में बढ़ने के लिए आवश्यक है।

(1) जांच : अभ्यास जितना महत्वपूर्ण है, साधना में विकसित होने के लिए 'पूछताछ' भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। पहला, 'मैं कौन हूँ?' मन को शुद्ध करने के लिए 'विचारण' करना चाहिए, ध्यान करना चाहिए। 'ज्ञान' में बढ़ने के लिए किसी से पूछताछ करनी चाहिए। जैसे दही के मथने से मक्खन निकलता है, वैसे ही खोज से ज्ञान प्राप्त होता है। "पूछताछ" का अर्थ है 'आत्मा की पूछताछ'। 'दार्शनिक जाँच' ज्ञान का मार्ग है। ज्ञान 'आत्म साक्षात्कार' का सही मार्ग है। कोई कितने भी जन्म ले ले, लेकिन जिसे 'ज्ञान' प्राप्त नहीं होता वह मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। 'मैं कौन हूँ? यह दुनिया क्या है? ज्ञान पूछताछ से आता है। यह पूछताछ तभी होती है जब मन खिलता है।

मन के स्वाभाविक विकास के लिए 'ध्यान' आवश्यक है। क्षण-क्षण मन अभ्यास की अपेक्षा बाह्य वस्तुओं पर लगा रहता है, स्त्रि दिखाता है।

ऐसे मामलों में क्या मुझे इसकी आवश्यकता है? और फिर यदि आवश्यक हो तो ही उस कार्य को करें। तब आप में 'आध्यात्मिक शक्ति' को बढ़ाने वाले कार्यों को करने की इच्छा होगी। इसके अलावा, आपको ऐसे कार्य नहीं करने चाहिए जिससे आपकी 'आध्यात्मिक शक्ति' नष्ट हो। वशिष्ठ ने कहा कि 'अन्वेषण' परम ज्ञान है। इसलिए, हम जानते हैं कि हम पूछताछ के माध्यम से ही ज्ञान बढ़ा सकते हैं।

2) आस्था: जब हमें एक अच्छा गुरु मिलता है, तो हमें आत्म-ज्ञान प्राप्त करने के लिए गुरु और गुरु के शब्दों पर विश्वास करना होगा। तभी हमें ज्ञान मिलता है। एक अच्छा गुरु हमेशा हमें 'सत्य' यानी 'आत्मा' यानी 'परमात्मा' की ओर ले जाने की कोशिश करता है। स्वाभाविक रूप से हमारा मन हमेशा सांसारिक

चीजों में लगा रहता है। लेकिन गुरु अपने उपदेशों से हमेशा हमें सही रास्ते पर ले जाते हैं। 'आत्मा' की और 'परमात्मा' तक पहुँचने में हमारी मदद करें।

मतंग महर्षि की शिष्या 'सवरी'। वह उसके ज्ञान और अपने गुरु के प्रति समर्पण पर ध्यान देने से बहुत प्रसन्न हुए और कहा, 'सर्वोच्च भगवान राम के रूप में आपके सामने आएंगे।' उसने अपने गुरु की बातों पर विश्वास किया और विश्वास के साथ राम की प्रतीक्षा की। 'मेरे मरने से पहले मेरे राम आएंगे। मेरे गुरु ने कहा' उसने इंतजार किया और निराश नहीं हुई। चित्त को आखिरकार भगवान राम की एक झलक मिली। इसके अनुसार शिक्षक ने कहा हमें हमेशा सकारात्मक सोच में रहना चाहिए।

नकारात्मक मत सोचो। इसलिए पत्री जी हमें हमेशा सकारात्मक विचार रखने के लिए कहते हैं।

साथ ही पत्री जी 'आस्था' के बारे में बहुत अच्छी बात करते हैं। बड़े ही आश्चर्यजनक ढंग से बताया गया है कि लोग एक जैसे दिखने पर भी अपनी 'आत्मा' अवस्थाओं के आधार पर अपना चरण और दिशा बदलते रहते हैं।

दुनिया में 3 तरह के विश्वासी होते हैं।

क) प्रथम प्रकार के विश्वासी :- वे 'आत्मा' अवस्था में बच्चों के समान होते हैं। वे कहते हैं कि हमें ईश्वर या गुरु में 'विश्वास' है, इसलिए वे मांग करते हैं कि ईश्वर और गुरु हमारे जीवन में बिना किसी समस्या के फूल की तरह हों। वे सभी जो सशर्त विश्वास रखते हैं, चाहे उनके जीवन में कितने भी उतार-चढ़ाव क्यों न आएँ, हम बहुत व्यस्त हैं और ईश्वर में विश्वास के साथ पूजा, प्रार्थना और कुछ अच्छा करने के लिए समय निकालते हैं, लेकिन कोई लाभ नहीं है, ऐसे भगवान को दोष देते हैं।

आध्यात्मिक रूप से वे छोटे बच्चों के समान हैं। ये सभी अपने-अपने मतानुसार ईश्वर और गुरु हैं प्रतिक्रिया की अपेक्षा करते हैं।

उन सभी को यह एहसास नहीं है कि पिछले जन्मों में कर्मों के प्रभाव

के कारण, वर्तमान जीवन के तथ्य और मानदंड बनते हैं, और उनकी वजह से उन्हें भविष्य के लिए आवश्यक कौशल प्राप्त होने वाला है। ये सभी कर्म सिद्धांत के कार्यान्वयन की ओर बच्चों की तरह बदल रहे हैं।

उदाहरण के लिए गंभीर आस्थमा से दुखित होनेवाले एक बच्चा ICE CREAM चाहे तो, बालक और ज्यादा दुखित होगा, अस्पताल जाना पड़ेगा, ऐसा सोचकर माँ उसके लिए कुछ नहीं खरीद सकती। लेकिन बच्चा ऐसा नहीं सोचता और अपनी इच्छा पूरी न करने के लिए माँ पर रोता है। साथ ही ये भक्त और शिष्य देवताओं और गुरु से शिकायत करते हैं कि उनकी मनोकामना पूरी नहीं हुई है और उनकी मुश्किलें दूर नहीं हुई हैं।

ख) दूसरे प्रकार के विश्वासी:- ये उन्नत आत्माएं हैं जो लेन-देन की प्रवृत्ति में फंसी हुई हैं और मानती हैं कि भगवान, गुरु महान चमत्कार कर सकते हैं। यदि वे अपने जीवन में कठिन समय का सामना करते हैं तो भी वे हिलते नहीं हैं। उन्हें लगता है कि भगवान और गुरु उन्हें उस मुश्किल से निकाल सकते हैं। उनका विश्वास यहाँ तक जाता है कि ‘यह मेरी समस्या नहीं है, यह भगवान की है, गुरु की है, वे इसे संभाल लेंगे’। वे और भी क्या समझते हैं कि “मेरी समय, शक्ति, और प्रेम को उनमें डाला है, मैं विश्वास करता हूँ कि वे मेरे भरोसा नहीं तोड़ेंगे।”

आध्यात्मिक यात्रा को तेज करने के लिए कुछ कर्मफलों का अनुभव करना चाहिए, तभी परमात्मा और गुरु जानते हैं कि वे इस भौतिक स्तर को उच्च अवस्था में पार कर सकते हैं। इसलिए वे मौन रहकर अपनी वृद्धि को साक्षी भाव से देखते हैं। तब यह सोचना बहुत ही मूर्खता है कि ‘क्योंकि मुझे आप पर विश्वास है, यह सुनिश्चित करना आपकी जिम्मेदारी है कि मैं मुसीबत में न पड़ूँ’। उसका कर्तव्य है कि जब वह डॉक्टर के पास जाए तो उसे ऐसा करने दे। ऑपरेशन के बाद, ‘जल्दी ठीक हो जाओ’। सोचा जाना चाहिए लेकिन डॉक्टर की शक्तियों को साबित करने के लिए नहीं सोचा जाना चाहिए।

ग) तीसरे प्रकार के विश्वासी:- यह सभी में सर्वश्रेष्ठ विश्वास है। यह पूर्ण

समर्पण है, जो दोधारी तलवार की तरह है। वे भगवान या भगवान पर कोई शर्त नहीं लगाते हैं। ये आध्यात्मिक रूप से परिपक्व आत्माएं हैं। ये पूरी तरह से ईश्वर और गुरु के प्रति समर्पित होते हैं। विकट परिस्थितियों में भी, वे किसी भी प्रकार की देखभाल और आराम की अपेक्षा किए बिना उनके प्रति बहुत भावुक रहते हैं। रोग हो, भोग हो, वियोग हो या संयोग हो, तुम जानोगे कि मेरा जीवन कर्म के सिद्धांत के अनुसार चलता है। हर घटना जो घटित होती है, 'ठीक है' के परम ज्ञान के साथ उन्हें स्वीकार करना।

उनका सम्मान करते हुए, वे अपने जीवन को आत्मा की उन्नति के लिए उपयोग करते हैं। पूर्ण समर्पण का परम विश्वास अभ्यास करना बहुत कठिन है। यह हमें सभी प्रकार की अपेक्षाओं से मुक्त करता है। यद्यपि ऊपर से यह प्रक्रिया हमारे अपने व्यक्तित्व को खोने लगती है, भीतर से यह हमें गुरु के व्यक्तित्व में बदल देती है। यह हमें एकजुट करती है। तब हम अपने आप को कितना खो देते हैं! हम भी देवताओं की तरह हो जाते हैं। फिर हम जो कुछ भी सुनते और बोलते हैं, वह सांसारिक अच्छा हो जाता है। ऐसी दिव्य आस्था रखने वाले साधक के लिए प्रकृति भी सर्वोच्च वस्तु प्रदान करती है।

3) आलोचना :- अभ्यास करने के बाद हमें हमेशा आलोचना से अपने दोषों का बोध करना चाहिए। उन्हें इसे ठीक करने का प्रयास करना चाहिए। हमें अपनी बुरी आदतों की आलोचना करनी चाहिए। ऐसी आलोचना कर रहे हैं इसलिए हम उन आदतों को धीरे-धीरे बदलते हैं। अगर हम इस तरह आलोचना नहीं करेंगे तो हम अपनी गलतियों को सुधार नहीं सकते। हम हमेशा 'हम सही हैं' की प्रवृत्ति में रहते हैं इसलिए हमें आलोचना करके गलतियों को सुधारना होगा।

बहुत सारे लोग दूसरों की आलोचना करते हैं। दूसरों की नहीं बल्कि खुद अपने आप के साथ आलोचना करनी है।

एक बार कहेंगे तो 'विचारणा' कई बार कहेंगे तो 'आलोचना'। हमें किसी के बारे में एक बार सोचना चाहिए। हमें पूछना पता होना चाहिए कि

जब कोई गुण है जो हमें दूसरों में पसंद नहीं है, तो हमें कभी भी ऐसा नहीं होना चाहिए।

हमारे ऋषियों का कहना है, 'दूसरों के लिए कभी भी वही काम न करें जिससे आपको दुःख होता है। ऐसा कहा जाता है कि यह रूढ़िवादी परंपरा है, रूढ़िवादी धर्म है। दूसरों की बार-बार आलोचना करने से कुछ भी अच्छा नहीं होता है। बार-बार अपनी और अपनी बुरी आदतों की आलोचना करने से हममें एक अच्छा बदलाव आएगा। सांसारिक जीवन अच्छा होगा। आध्यात्मिक जीवन और भी अच्छा होगा।

4) विश्लेषण:- जो भी बात सुनी जाती है, उसकी सुनी हुई बात का विश्लेषण करना चाहिए। जितना अधिक विश्लेषण करता है, उतना ही अधिक उसके बारे में सीखता है। उदाहरण के लिए, पत्नी जी कहते हैं, 'साथियों से प्यार करना चाहिए' विश्लेषण करें तो समझ में आएगा कि प्रेम क्यों करना चाहिए। हम धरती पर कैसे आए? हम यहां क्यों आए? और धरती पर हर जीव सबक सीखता है। समझ में आता है कि वे अनुभव हासिल करने आए हैं। सारा ब्रह्मांड एक 'आत्मा' अर्थात् 'ईश्वर का एक रूप' है। 'अज्ञान' के कारण उन्हें अलग-अलग देखा जाता है। अर्थात् उन्हें द्वैत के रूप में देखा जाता है। जब 'ज्ञान' आता है, तो सब कुछ 'आत्मा' का रूप होता है।

सब कुछ एक है, इसका अर्थ है 'हमें किसी को चोट पहुंचाने का कोई अधिकार नहीं है'।

यह सारी सृष्टि एक कपड़े के समान है जिसे फाड़ा नहीं जा सकता। इसलिए कहा गया है कि इस सृष्टि के किसी भी जीव को नुकसान नहीं पहुंचाना चाहिए। भगवद गीता में यही कहा गया है।

श्लोक: विद्याविनयसम्पन्ने ब्रह्मणे गवि हस्तिनी ।

शुनि चैव श्वपाके च पंडिता: समदर्शिनः । । (भ.गी.5-18)

तात्पर्य:- जो शिक्षा, विनम्र ब्रह्मण, गाय, हाथी, कुत्ते और कुत्ते का मांस पकाने

और खाने वाले चंडालू को समभाव से देखते हैं, वे विद्वान हैं।

गीता कहती है कि ब्रह्मण, गाय, हाथी, कुत्ते की दृष्टि समान होनी चाहिए। क्योंकि सबकी एक ही 'आत्मा' है, किससे घृणा की जा सकती है? इसलिए गीता में कहा गया है, 'समवतं योग उच्यते'। इसलिए यदि हम पत्नी जी की हर बात का विश्लेषण करें, तो हमें बहुत ज्ञान प्राप्त होगा। यदि हम अपना ज्ञान बढ़ाना चाहते हैं, तो हमें हर चीज का विश्लेषण करना चाहिए। एक बुद्धिमान व्यक्ति के रूप में बढ़ो।

5) विवेक:- खट्टे-मीठेआम का फल धीरे-धीरे मीठा हो जाता है। साथ ही विवेकाभ्यास के कारण हम रागद्वेष छोड़ेंगे। आशा छोड़ देते हैं।

इसलिए मन पवित्र और प्रसन्न हो जाता है। शुद्ध मन से ही जगत् मध्य की अवधारणा और सत्य के रूप में 'आत्मा' की अवधारणा स्थापित होती है। हमारी बात हमेशा सच होनी चाहिए। जैसा है वैसा ही कहना चाहिए। कोई अतिशयोक्ति नहीं होनी चाहिए और दूसरों के प्रति कोई दुर्भावना नहीं होनी चाहिए। दूसरों का मजाक मत उड़ाओ। सत्य का प्रकाश हममें ऐसे चमके जैसे स्वच्छ दर्पण से सूर्य का प्रकाश चमकता है।

मैं मल-मूत्र प्रतिधारित शरीर नहीं हूँ, सत्य और नित्य आत्मा हूँ, यह जानना ही विवेक है। इसलिए साधक को यह समझकर कि हर जन्म में जन्म और मृत्यु के अनेक कष्ट होते हैं, जन्म और मृत्यु के संसार से बाहर निकलने का प्रयास करना चाहिए ध्यान का अभ्यास करके 'आत्मा' के माध्यम से 'ज्ञान' और 'ब्रह्मज्ञान' प्राप्त करना बुद्धिमानी है क्योंकि 'आत्म-ज्ञान' ही एकमात्र शरण है। भले ही मनुष्य का जन्म ज्ञान प्राप्त करने के अवसर के साथ हुआ हो, लेकिन ध्यान का अभ्यास किए बिना अपना जन्म बर्बाद करना मूर्खता है।

6) वैराग्य:- वैराग्य सिद्धि के कारण ही ज्ञान सिद्धि होने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। मोक्ष धारणा के झूठे रूपों को छोड़ कर शाश्वत सत्य 'आत्मान' (ईश्वर) का ज्ञान है। उसके लिए 'आत्मा' की भक्ति मतलब 'भगवान' पर विशेष भक्ति

होनी चाहिए। असली वैराग्य का अर्थ है सांसारिक मामलों में, शरीर और इन्द्रियों के मामलों में, सुख भोगने की इच्छाओं में, अनुराग इन सभी में नहीं रहकर आत्मान्वेषण में ही रहना है। जो बात सभी को जाननी चाहिए वह यह है कि जीवन उसी तरह घटता है जैसे शरीर जो घर है वह समय की आग में जल रहा है। तो जब तक यह शरीर है। निरोग रहते हुए मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा रखनी चाहिए। आप कहते हैं, 'मुझे अभी तक भक्ति वैराग्य मार्ग अपनाने का अवसर नहीं मिला है, मेरे पास कई कार्य, दबाव आदि हैं। मुझे अकेले ही सब कुछ करना है। जब बच्चे बड़े हो जाएंगे, तब परिवार की बोझ आपको देकर मैं प्रयत्न करूंगा।'

यह तरीका कैसे काम करता है जैसे अगर किसी घर में आग लगी हो, तो कुआं खोदा जाता है और उस पानी से घर को बुझा दिया जाता है। नहीं तो समझदार लोग पास के पानी से घर को बुझाने की सोचते हैं। इसलिए यदि कोई मनुष्य बंधनों से मुक्त होना चाहता है, तो उसे मोक्ष के लिए भक्ति और त्याग का अभ्यास करना चाहिए, उसे शरीर के लिए वैराग्य होना चाहिए, और उसे आत्मशक्ति होनी चाहिए। 'आत्मज्ञान' से ही शरीर से आसक्ति मिटती है और वैराग्य आता है।

सांसारिक जीवन में तीन प्रकार के वैराग्य होते हैं।

(1) पुराण वैराग्य, (2) मातृ वैराग्य, (3) श्मशान वैराग्य।

(1) पुराण वैराग्य:- जब कोई विद्वान या गुरु पुराणों और शास्त्रों में अच्छी बातें बताते हैं, जब तक वे उन बातों को सुनते हैं, वे भी उस तरह का अभ्यास करना चाहते हैं और उस भावना को प्राप्त करना चाहते हैं, लेकिन वे बातें पुराण हैं। जब वे सुनते हैं, तो वे सांसारिक और सांसारिक मामलों में लीन हो जाते हैं और उन शब्दों को भूल जाते हैं और अनदेखा कर देते हैं। इसे पुराण वैराग्य कहते हैं।

(2) प्रसूति वैराग्य:- महिलाएं प्रसव के दौरान प्रसव पीड़ा को सहन करने में असमर्थ होती हैं, 'यह पुष्ट्रों की संगति के कारण है कि मैं एक दर्दनाक स्थिति

में हूं। यदि नहीं, तो मुझे कोई दर्द नहीं होगा, है ना? एक महिला के रूप में जन्म लेना एक ऐसा दर्द है, अन्यथा कोई दर्द नहीं होगा?’ वे सोचते हैं। इतना ही नहीं चाहे कुछ भी हो फिर से पुरुष सांगत्य नहीं करने का सोचते हैं, लेकिन तीन चार महीने में ही पुरुष सम्भोग के लिए इंतज़ार करते हैं। प्रसव समय में जो वैराग्य है वह बाद में नहीं होगा। इसे प्रसूति वैराग्य कहा जाता है।

(3) श्मशान वैराग्य:- जब किसी की मृत्यु होती है तो उसके सभी रिश्तेदार शामिल होते हैं और मृतक के लिए शोक मनाते हैं। बाद में वह शव को कब्रिस्तान में दफनाते हुए काफी देर तक वहीं बैठा रहा और बोला, किसी दिन हमें भी जाना ही है न।

जाते समय उसकी तरह कुछ भी नहीं ले जा सकते न? मतलब कुछ भी शास्वत नहीं है? हमारे साथ नहीं आएगा न? ऐसे वैराग्य से श्मशान में काम होने तक सभी बोलते हैं। वह कार्य पूरी होने के बाद घर जाते ही वैराग्य को भूलकर फिर से सांसारिक इच्छाओं में, व्यवहारों में डूब जाते हैं। इसे ही ‘श्मशान वैराग्य’ कहते हैं। ऐसा वैराग्य ज्ञान की ओर नहीं ले जाता। ज्ञान ‘परमात्मा’ को जानना है जो हर समय और सभी जगहों पर सत्य है। यह न जानना अज्ञान है।

7) विनम्रता :- आत्मज्ञान व्यक्ति को अनंत बना देता है। अध्यात्म के मार्ग में अहंकार एक बहुत बड़ी बाधा है। अहंकारी लोग आत्म-ज्ञान को पचा नहीं पाते। आत्म-ज्ञान प्राप्त करने के लिए, व्यक्ति को विनम्र होना चाहिए और ‘आत्म-ज्ञान’ और ‘ब्रह्म ज्ञान’ प्राप्त करने वाले शिक्षक के साथ अध्ययन करना चाहिए। लेकिन कोई भी अहंकार काम नहीं आएगा। अहंकार ‘आत्मज्ञान’ में सबसे बड़ी बाधा है। जिन लोगों में अहंकार है उनके लिए ‘आत्मज्ञान’ प्राप्त करना बहुत कठिन है, यह फिसलन भरी ढलान पर यात्रा के समान है। कीचड़ भरे पानी में हम जमीन को नहीं देख सकते। हम मिट्टी को साफ पानी में देख सकते हैं। अहंकार से भरे चित्त में शांति नहीं मिलती। अहंकार उदास होने पर ही आत्मानंद प्राप्त होता है।

साधक विकसित होने के लिए निरंतर अभ्यास

1) सुनना 2) माइंडफुलनेस 3) निधिध्यासन 4) बोध

1) सुनना:- साधना में विकसित होने के लिए व्यक्ति को बहुत सी बातें जानने की आवश्यकता होती है। यह सभी को पता होना चाहिए। भरोसा उन पर करो जो पहले पढ़ाते हैं। उपदेशक पर जितनी अधिक आस्था होती है, उतनी ही मन को छू लेने वाली बातें होती हैं। आध्यात्मिक बातों को समझने के लिए हृदय की शुद्धि आवश्यक है। क्योंकि मन बहुत सी सांसारिक बातों पर लगा रहता है, इसलिए उपदेशक जो कहते हैं वह शायद मन को न लगे। इसलिए व्यक्ति को मन को सांसारिकता से हटाकर आत्मा के आरोहण की ओर ले जाने का प्रयास करना चाहिए। इसके लिए मेडिटेशन बहुत मददगार है। अगर सांसारिक चीजें मजबूत हैं तो आध्यात्मिक चीजों को समझना आसान नहीं है।

साधना के लिए 'श्रवणम' आवश्यक है, गुरु के शब्दों को अच्छी तरह से समझना चाहिए। सभी महान लोग सुनने के कारण ही महान बने हैं।

जैसे:- वरुण के पुत्र भृगु, उद्दालक के पुत्र श्वेत-केतु के पिता से सीखा। भगवान राम ने वशिष्ठ के उपदेशों को तब सुना जब वे दुःख और गहरी निराशा में थे। तभी उन्हें ज्ञान हुआ। इसलिए ध्यान से सुनें और आत्मज्ञान प्राप्त करें। सबसे अच्छा श्रवण परीक्षित द्वारा ऋषि शुक के साथ किया गया था। यह श्रवण तीन प्रकार का होता है अ) अधमं ब) मध्यमं सी) उत्तमं।

अ) अधम श्रवण:- सुनकर वे सोचते हैं 'बहुत अच्छा, हमें भी इसका अभ्यास करना चाहिए'। लेकिन कुछ दिनों बाद वे सुनी सुनाई बातों को भूल जाते हैं और पहले जैसा व्यवहार करने लगते हैं। व्यवहार परिवर्तन की तलाश करें। जो लोग ध्यान का अभ्यास करते हैं, यदि वे कम हैं, तो कितने ही दिन अभ्यास कर लें, कोई परिणाम नहीं मिलता। इसका अर्थ है कि वे कितनी भी बार सुन लें, कोई परिवर्तन नहीं होता, इसका अर्थ है कि मन अभी शुद्ध नहीं हुआ है।

बी) मध्यम श्रवण: वे जो सुनते हैं उसे ध्यान से सुनते हैं, उसका अभ्यास करते हैं और आध्यात्मिक रूप से विकसित होने की कोशिश करते हैं। सभी से अच्छी बातें सीखने के लिए सभी ध्यान से सुनते हैं। जो कुछ अच्छा माना जाता है उसका अभ्यास किया जाता है। उन्हें लगता है कि वे सही रास्ते पर हैं।

ग) उत्तम श्रवण: आध्यात्मिक बातों को ध्यानपूर्वक सुनता है और उनका अभ्यास दस लोग करते हैं। सभी पिरामिड मास्टर्स ऐसे ही होते हैं।

जब वे ध्यान में आये हैं, वे पत्नी जी से सीखकर शाकाहारी बन गए। मांस खाना महापाप है और मनुष्य का भोजन शाकाहारी है। इतना ही नहीं, प्रत्येक जीव को पूर्ण रूप से जीने का अधिकार है और साथी प्राणी हम जैसे ही हैं और वे सभी को अहिंसक शाकाहारी और साधक बना रहे हैं।

वे प्रतिदिन नियमित रूप से ध्यान करते हैं। ध्यान सभी को कहा जाता है। साधना तो सभी करते हैं। इसे सर्वश्रेष्ठ श्रवण कहा जाता है। सुनने और मनन करने से हम अपनी ऊर्जा को बढ़ाते हैं। शाकाहारी बनकर हम अपने पापों को कम कर सकते हैं।

2) मनन :- श्रवण, रसोई में खाना पकाने जैसा है। केवल खाना बनाना काफी नहीं है, उससे भूख नहीं मिटती। पका हुआ भोजन करने से भूख शांत होगी। मन वैसा ही है जैसा हम खाते हैं। ध्यान करना आना चाहिए। मनुष्य को प्रकृति की हर चीज को देखना और सीखना चाहिए। हम गाय को देखकर सीख सकते हैं कि कैसे काम करना है। तेंदुआ गाय द्वारा खाई हुई घास को चबाकर अच्छे से खा लेता है, हमें भी जो हम सुनते हैं उसे लिखकर बार-बार पढ़ना चाहिए। या जब यह पूरा हो जाए तो इसे याद करके नोट कर लेना चाहिए। इसे 'मनन' कहा जाता है।

तब सुनी हुई बातें बिना भुलाए याद रहती हैं। सुनी हुई बात का अनेक बार मनन करना चाहिए। तभी अभ्यास करने की स्त्रि पैदा होगी।

‘मैं’ का मतलब शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अभिमान नहीं है। मैं जन्म और मृत्यु रहित ‘आत्मा’ हूँ, इस विषय का निरन्तर चिंतन करते रहना चाहिए।

वसिष्ठों ने पुत्रप्रार्थ से आत्म-ज्ञान प्राप्त किया है। कहा जाता है कि केवल उसी के कारण जीव सभी कष्टों से दूर हो जाता है और मोक्ष प्राप्त होता है।

सज्जनों की बातों को ध्यान से सुनना ही मनुष्य का वास्तविक प्रयास है। जो सुना गया है उसका निरंतर ध्यान करना चाहिए। मतलब हम क्या सोचते हैं। अभ्यास करने का प्रयास करें। यह 'पुरुष प्रयास' है।

3) निधिध्यासन:- निधिध्यासन सुनने और ध्यान करने वालों को आता है। यानी अभ्यास। अगर सुनना खाना पकाने जैसा है, तो मन खाने जैसा है। खाया हुआ भोजन पच जाता है।

जिन्होंने इस तरह से सुना और मनन किया है वे हमेशा आध्यात्मिक मामलों पर ध्यान केंद्रित करते हैं। यह उनमें एक 'खजाने' की तरह है। आध्यात्मिक चीजें हमेशा सबके पास होती हैं।

उन्हें सुनने, जिज्ञासा और विश्लेषण के साथ याद करने, अभ्यास करने और ध्यान करने से, ज्ञान का 'खजाना' मन में बढ़ता है। 'निधिध्यासन' का अर्थ है समाधि अवस्था की प्रारंभिक अवस्था। इस परिपक्व अवस्था को 'समाधि' कहा जाता है।

4) बोध:- आत्मज्ञान तभी होता है जब इन तीनों का अनुभव होता है। उनमें यह बोध होता है। याज्ञवल्क्य ने बृहदारक उपनिषद में मैत्रेयी को यही बताया। कहा जाता है कि आत्मा की अनुभूति के लिए श्रवण, मनन और निधिध्यासन अवश्य करना चाहिए।

श्रवण, ध्यान और निधिध्यासन (अभ्यास) के माध्यम से पिछले जन्मों के दुर्गंध और संस्कार दूर हो जाते हैं और ज्ञाननिष्ठ का निर्माण होता है। तभी मन निर्मल होगा। जीवन की भावना नष्ट हो जाती है। स्वयंप्रकाशित 'आत्मा' बनी रहती है।

ज्ञान की अग्नि मन को तपाए हुए सोने की तरह शुद्ध करती है। 'ज्ञान' के बिना 'मोक्ष' नहीं है। अतः साधक को निरन्तर श्रवण, चिन्तन एवं निधि साधना करनी चाहिए। तभी आता है 'आत्मज्ञान'। 'आत्मसाक्षात्कार' होता है।

साधना करने वालों के लिए बाधाएँ

जो लोग आत्म-ज्ञान और आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करने के लिए ध्यान का अभ्यास करते हैं, उन्हें भी कुछ बाधाओं का सामना करना पड़ता है। केवल फल चाहना ही काफी नहीं है, व्यक्ति को एक ऐसा पेड़ लगाने का भी प्रयास करना चाहिए जो फल दे। जैसे बीज अंकुरित होता है वैसे ही मातम उगते हैं। पौधे को सावधानीपूर्वक उगाना कितना महत्वपूर्ण है! मातम दूर करने का प्रयास करना भी उतना ही आवश्यक है। मातम के बीच पौधा ठीक से विकसित नहीं हुआ। वेदांत, सारोपनिषद् कि आत्म साधना करने वालों में भी मातम के समान बाधाएँ आती हैं।

वे हैं (1) लय (2) विक्षेप (3) कषायम (4) रसा स्वादना। ये चार बाधाएँ ध्यान को रोकती हैं। इन चार विघ्नों को अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए और साधना में आने वाले विघ्नों को दूर कर देना चाहिए।

1) लय:- जब हम ध्यान के लिए बैठते हैं तो हम इन्द्रियों का अंतर्मुखीकरण करते हैं। ध्यान करने के लिए अन्तर्मुख होने के समय में, ध्यान नहीं करनेवाले मन निद्रावस्था में पड़ जाता है। इसे “लय स्थिति” कहा जाता है। साधक को इससे पार होना चाहिए।

इस स्थिति का कारण यह है कि अभ्यासी को जब सोना चाहिए तब नींद नहीं आती, बहुत अधिक भोजन करना, बहुत अधिक उपवास करना भी नींद का कारण बनता है। ध्यान के लिए बैठने से पहले शारीरिक रूप से थकाने वाले कार्य नहीं करने चाहिए। यदि आप यह सब जानते हैं और ध्यान रखते हैं, तो बिना किसी अवस्था में आए ध्यान आसानी से किया जा सकता है।

योगी वेमना ने कहा कि :

‘निद्र मानगरादू, निद्र बूनगरादु,

निद्रालोन योग निद्र तेलिसि ।

भद्रमगु ब्रह्मविद्य,

विस्वदाभिराम विनुरवेम ।।’

2) व्याकुलता:- ध्यान में दूसरी बाधा ‘व्याकुलता’ है। जब हम लय की स्थिति से गुजरते हैं तो हम जो देखते हैं वह व्याकुलता है। व्याकुलता का अर्थ है कि मन सांसारिक चीजों पर भटकता है। इसे महसूस करें और भटकने को रोकने का प्रयास करें। एक स्थान पर मन को लाने में प्रयास करें। जब मन बहिर्मुखी हो तो उसे फिर से अंतर्मुखी करना चाहिए। इसका सबसे आसान तरीका है ‘श्वास पर ध्यान’ और साथ ही सांसारिक वस्तुओं की नश्वरता को जानना।

इसी प्रकार यदि कोई मन में चिंता करता है और चीजों के भ्रम के कारण चिंता करता है, तो बिखराव की त्रुटि दूर हो जाएगी।

हमें एक और बात का ध्यान रखना होगा। आमतौर पर दिमाग तब भी ‘ओवरथिंक’ करता है, जब हम अपने दैनिक जीवन में कुछ कर रहे होते हैं। इस प्रकार अभ्यस्त मन ध्यान के दौरान विचलित हो जाता है। इसलिए साधक को चाहिए कि वह मन में उत्पन्न होने वाले विकल्पों का निरन्तर अवलोकन करते हुए सही मार्ग पर चल सके। तभी बिखराव से बचा जा सकेगा।

3) कषायम :- ध्यान के समय व्यक्ति के रागदंश फूटते हैं और साधना में विघ्न डालते हैं। इसे ‘औषधि’ कहा जाता है। विक्षेप और कषायम में अंतर यह है कि मन बाहरी चीजों की ओर मुड़ता है जिसे विक्षेप कहा जाता है। बाहरी वस्तुओं के अलग होने और पूर्व गंधों के कारण विक्षोभ के साथ राग देवों के निर्माण को ‘कषाय’ कहा जाता है। रागद्वेष से दूषित मन साधना में बाधा डालता है। सब कुछ समझ लेने से रागद्वेष कम हो जाएगा और कषाय दोष भी दूर हो जाएगा।

4) रसा स्वादना:- ध्यान में चौथी बाधा रसास्वादनम है। इस बाधा ध्यान में

चरमोत्कर्ष दशा तक पहुँचने पर आती है।

घटित होना रसवदन को 'रसास्वादन' को 'सूखास्वादना', 'सुखवदन' के नाम से भी जाना जाता है। कीमिया का अर्थ है दुःख से मुक्त होने की अवस्था। दुःख से मुक्त होने का अर्थ यह नहीं है कि निर्निश्चय की स्थिति प्राप्त हो जाती है, गहरी नींद में भी हम उस स्थिति में होते हैं, समाधि शाश्वत आनंद है, लेकिन निर्निश्चय की स्थिति नहीं है। इसलिए जब कोई दुःख की स्थिति के बजाय पूर्ण आनंद की स्थिति का अनुभव करता है, तो वह 'रसास्वादन' से छुटकारा पा लेता है और समाधि प्राप्त कर लेता है।

इस प्रकार की बाधाओं से अवगत रहें। हटाएं और 'ध्यान' जारी रखें। ध्यान की विधि श्वास पर ध्यान है। वे एक उपयुक्त सीट पर आराम से बैठते हैं...

दोनों हाथ एक साथ... दोनों आंखें बंद... प्रकृति स्वाभाविक रूप से हो रही श्वास-प्रश्वास को देख रही हो! बीच-बीच में बहुत से विचार आते भी हैं तो उन्हें समय-समय पर 'काट' कर... बार-बार सांस पर... ध्यान दोहराया जाए तो... धीरे-धीरे...विचारहीनता की स्थिति पैदा हो जाएगी... विचार अवच्छेद हो जाएंगे... मन उदासीन है। यह खाली होगा। मन शांत हो जाता है। यह ध्यान की अवस्था है।

इस विचारहीन अवस्था में होने वाले कई शारीरिक और तंत्रिका संबंधी प्रभाव मंडला, आत्म-अनुभवों का अवलोकन करना होना चाहिए उस अवस्था में विश्वमाया महत्वपूर्ण ऊर्जा शरीर में प्रचुर मात्रा में प्रवेश करती है और तंत्रिका तंत्र को साफ करती है।

उस शक्ति से सभी रोग कम हो जाएंगे। नाडीमंडल शुद्धि के कारण कर्म मिट जाते हैं।

हर दिन किसी भी उम्र का... कम से कम हर 2 मिनट में...दिन में दो बार...ध्यान करना चाहिए।

पाँच भ्रम

साधक अभ्यास कर रहा है लेकिन पाँच भ्रमों के कारण 'आत्मा' को नहीं जानता। सामान्य साधकों द्वारा इन पाँच भ्रमों का स्वाभाविक रूप से सामना किया जाता है।

1) पहला भ्रम:- पहला भ्रम यह सोच रहा है कि 'मैं जीव हूँ, भगवान अलग है'। यह विषय, 'जीव ईश्वर है', आधार की त्रुटि के कारण नहीं जाना जा सकता है। यदि अनाज को कई बार पिसा जाए तो कई प्रक्रिया के बाद कुछ चिकनापन आ जाएगा, कुछ चमक आ जाएगी और वह 'चावल' के रूप में निकल आएगा। साथ ही साधक अभ्यास द्वारा सभी बाधाओं को दूर करता है और महसूस करता है कि जीव ही ईश्वर है अर्थात् वह स्वयं ईश्वर है।

2) दूसरा भ्रम:- सत्य 'आत्मा' की वास्तविकता को जानने में असमर्थता। देखिए अगर शीशे पर धूल पड़ जाए तो चेहरा साफ नहीं दिखाई देता। अगर आप आईने पर लगी धूल को पोंछ दें तो चेहरा साफ नजर आता है। साथ ही, 'आत्मा' को ढकने वाले मन की अशुद्धियों के कारण वह 'आत्मा' को नहीं जान पाता। लेकिन ध्यान के अभ्यास से मन की अशुद्धियाँ दूर हो जाती हैं और मैं 'आत्मा' हूँ, यह पता चल जाएगा।

3) तीसरा भ्रम:- अवस्थात्रयां का अर्थ है 'जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति' ये तीन अवस्थाएँ। इन तीन अवस्थाओं को 'आत्मा' साक्षित्व में रहता है। अवस्थाएँ जाग्रत अवस्था में स्थूल शरीर, स्वप्न अवस्था में सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर के साथ अनुभव की जाती हैं। सुषुप्त अवस्था में यह सोचना सही नहीं है कि 'मैं अनुभव कर रहा हूँ'। वह वास्तव में साक्षी 'आत्मा' है। तीनों अवस्थाओं में वे इस सत्य को जाने बिना ही भ्रम में हैं। यह भ्रम भी 'ध्यान साधना' से दूर होता है।

4) चौथा भ्रम:- भ्रम कि 'संसार' अलग है और 'आत्मा' अलग है। जांच की

जाए तो मिट्टी के बने बर्तन अलग दिखते हैं, लेकिन मिट्टी एक ही है! हालांकि सभी ज्वैलरी अलग-अलग दिखती हैं, लेकिन इसमें सोना एक ही है। यह ज्ञात होना चाहिए कि दृश्य संसार और दृश्य वस्तुएं आत्मा से जिज्ञासा और ज्ञान के माध्यम से पैदा होती हैं। यह जान लेना चाहिए कि संसार और आत्मा अलग नहीं हैं। संसार में यह जान लेना चाहिए कि प्रत्येक वस्तु का अभिन्न अंग 'आत्मा' है। ध्यान के अभ्यास से यह भ्रम भी दूर हो जाता है।

5) पांचवा भ्रम:- संसार सत्य मानकर धक्का देता है। सूर्यबिम्बा और सूर्य का प्रकाश एक ही सूर्य हैं, लेकिन वे भिन्न हैं? पर सब एक हैं! साथ ही, यह भी जानना चाहिए कि 'परमात्म्य' 'आत्मा' है और यह कि ब्रह्मांड, पंचभूत समुद्य, जो 'आत्मा' से निकला है, एक है। यही अद्वैत है। इस प्रकार निरन्तर साधना से पाँचों भ्रम दूर हो जाने चाहिए।

साधक की विशेषताएं

एक साधक में चार विशेषताएं होनी चाहिए। वे हैं 1) धीरज 2) सहनशक्ति 3) ईमानदारी 4) प्रतीक्षा

1) धीरज:- साधना के अभ्यास में आया हुआ साधक बहुत धैर्यवान होने पर ही उन्नति कर सकता है। इसीलिए पत्नी सर ने आत्मज्ञान की इच्छा से साधना में आने वाले पिरामिड के उस्तादों को 'ज्ञान नवरत्नालु' कहे जाने वाले नौ रत्नों जैसे वाक्य सुनाए। यदि आप उन्हें समझते हैं और अभ्यास करते हैं, तो आप स्वयं और ब्रह्म के सभी ज्ञान को जानने में सक्षम होंगे। इसमें छठा रत्न 'धैर्य ही प्रगति है' बहुत ही अद्भुत है। जब सही सद्गुरु हमारे जीवन में आते हैं तो सही सलाह देते हैं। एक साधक को जिस चीज की आवश्यकता होती है वह है 'धैर्य'।

जब हम अज्ञानी कहते हैं, 'वे बिना कुछ किए अपनी आँखें बंद करके बैठते हैं। यदि आप अपनी आँखें बंद कर लेते हैं तो क्या होता है? क्या यह समय की बर्बादी है?' कहा जाता है इसलिए हमें बाहर से बहुत अपमान मिलते हैं। उन्हें सब सहना पड़ता है।

इसके अलावा ध्यान में स्नायु-तंत्र की शुद्धि के समय अनेक कष्ट होते हैं जिन्हें धैर्यपूर्वक सहन करना पड़ता है। साधक को कभी अधीर नहीं होना चाहिए। वह इसे पसंद करे या न करे, उसे सब्र के साथ सहन करना पड़ता है। हमें हर तरह से अपमान सहने में सक्षम होना चाहिए। घर में, रसोई में और बाहर कोई भी कष्ट सहन करने में सक्षम होना चाहिए।

शिरडी बाबा ने भी दो अनमोल वचन कहे। वे 'श्रद्धा', 'सबुरी' हैं, वह एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। इसलिए साधकों ने सिखाया कि 'सबुरी का अर्थ है धैर्य'।

प्रह्लाद को उसके पिता ने बहुत कष्ट दिए... फिर भी प्रह्लाद ने यह सब सहन किया। इसी कारण वे 'आत्मज्ञान' और 'ब्रह्मज्ञान' प्राप्त करने में समर्थ हुए। 'आध्यात्मिक ज्ञान' चाहने वाले शरीर और मन को प्राथमिकता नहीं देते। वे किसी भी मामले में असहिष्णु नहीं हैं। सब कुछ धैर्य से होता है। इसलिए पत्नी जी पिरामिड मास्टर्स को 'धैर्य ही प्रगति है' का उपदेश दिया।

2) सहनशक्ति - साधक के लिए जितना धीरज आवश्यक है उतना ही सहनशक्ति आवश्यक है, वयस्क कहते हैं कि कुछ सहने से ही बहुत कुछ सीखने को मिलता है। कभी-कभी जैसा हम सोचते हैं वैसा कुछ नहीं होता। फिर, जैसा कि बहुत से लोग सोचते हैं, कुछ नहीं हो रहा है। 'भगवान को मुझ पर कोई दया नहीं है' ऐसे बोलते हैं। भगवान हमें कोई दुःख नहीं देते हैं।

हम जो करते हैं वही हमारे पास वापस आता है। तो पहली बात जो एक अभ्यासी को जानने की जरूरत है वह है 'कर्म का सिद्धांत'। यदि आप यह जानते हैं, यदि आपको वह नहीं मिलता है जो आप चाहते हैं, तो आपको चोट नहीं लगेगी। उन्हें लगता है कि कुदरत ने यह नहीं दिया है क्योंकि मुझे इसकी जरूरत नहीं है। अन्यथा, 'मैंने किसी भी जन्म में उसके साथ अन्याय किया है। वह मुझे इस जन्म में दुखी कर रहा है' और उसे दुखी करने वालों का दर्द सहन करो।

पत्नी सर से मिलने तक सभी अधीर और दुखी थे। सर से मिलने और सर द्वारा बताए गए 'कर्म सिद्धांत' को जानने के बाद सभी को धैर्य और सहनशीलता की आदत हो गई। तभी तो सब सुख से रह पाते हैं। कोई भी कठिनाइयों से पीड़ित नहीं है और धैर्यपूर्वक उन्हें 'वे हमारे कर्मों के परिणाम' के रूप में अनुभव कर रहे हैं। यदि आप कठिनाइयों को सहन नहीं करते हैं, तो आप कुछ हासिल नहीं कर पाएंगे।

मलयालम स्वामी इसका एक छोटा सा उदाहरण देते हैं। यदि दस रुपये की लोहे की छड़ को घोड़े की कमर का पट्टा में बदल दिया जाए, तो उसका मूल्य बीस रुपये होता है। उस छड़ को यदि चाकू में बदला जाए तो वह तीस

स्पये की होगी। उस चाकू को सुई में बदला जाए तो पचास स्पए लगेंगे। अगर इन्हें वाच स्प्रिंग में बदल दिया जाए तो यह दो सौ हो जाएगी। कीमत बढ़ने का कारण यह है कि रॉड को आग और हड़ताल के झटकों से इतना नुकसान हुआ है। यह सब उस रॉड ने चुपचाप से सेहन किया। ऐसे सेहने पर ही इसका मूल्य बढ़ा।

इसी प्रकार जब मनुष्य अपने कष्टों को सहता है, साधना में कष्टों को पार करता है और पीछे छोड़ देता है बुरे कर्मों का मैल, तो वह जीव न होकर ईश्वर हो जाता है। मूल्य बिना अंत के बढ़ता है।

3) ईमानदारी:- ईमानदार होने का अर्थ है 'सत्य' में रहना। एक अर्थ में 'धर्म' के रूप में जीना है। 'सत्य' वही जान पाएगा जो 'धर्म' जीएगा। जो 'सत्य' धारण करेगा वह इस धरती पर सत्यवादी होगा।

आज सभी मनुष्य 'सत्य' को नहीं मानते। 'धर्म' का अभ्यास नहीं करते। ईमानदार नहीं रहते। जिस प्रकार 'सत्य' में विश्वास करने का अर्थ है ईश्वर में विश्वास करना, उसी प्रकार 'धर्म' का पालन करने का अर्थ है ईश्वर का अनुसरण करना। मानव जन्म के उद्देश्य को जानने के लिए व्यक्ति को पत्नी जी द्वारा बताए गए ध्यान का अभ्यास करना चाहिए।

हम सोचते हैं 'झूठ मत खेलो' लेकिन हम कुछ कारण बता कर झूठ खेलते हैं। साथ ही किसी को प्रताड़ित नहीं किया जाना चाहिए। हमें लगता है कि लेकिन किसी न किसी मामले में हमें किसी न किसी तरह से नुकसान ही होता रहता है। सभी मनुष्य वह नहीं कर पाते जो वे करना चाहते हैं और जो वे करना चाहते हैं वह उनके दिमाग का कारण होता है। इस मन को वश में करने की युक्ति है 'ध्यान अभ्यास'। ध्यान के अभ्यास से ही मनुष्य वह बन सकता है जो वह बनना चाहता है।

वह जैसा बोलना चाहता है, वैसा बोल सकता है। ईमानदारी के अभाव में हम अनेक पाप कर्म करते हैं।

जब तक उन कर्मों का अस्तित्व है, हम 'आत्मा' को नहीं जान सकते। पाप कर्मों से बचने और वाणी पर नियंत्रण रखने के लिए 'ध्यान' करना चाहिए। केवल 'ध्यान' के द्वारा ही हम सत्यवादी हो सकते हैं।

4) प्रतीक्षा:- साधकों के लिए यह भी आवश्यक है। जब हम किसी के अनुभवों को सुनते हैं तो दुखी हो जाते हैं और सोचते हैं, 'क्या मुझे ऐसे अनुभव नहीं हुए?' लेकिन हमें ऐसा महसूस नहीं करना चाहिए। हमें सभी के अनुभवों को सुनकर, 'मुझे भी ये अनुभव कभी भी आएगा। मेरी ध्यान साधना को बढ़ाना' ऐसे सोचना चाहिए। गुरु के बात पर विश्वास रखना चाहिए।

शबरी ने कई वर्षों तक श्रीराम की प्रतीक्षा की लेकिन निराश नहीं हुई। अंत में रामदर्शन मिले। हमें अभ्यास में भी अपना समय बढ़ाने की जरूरत है। खान-पान में सावधानी रखनी चाहिए। हमें अपने व्यवहार पर नजर रखनी चाहिए। परिणाम की प्रतीक्षा न करें लेकिन निराश न हों।

‘असफलता भी सफलता की एक मुख्य सीढ़ी ही है!’

- ब्रह्मर्षि पत्री जी

साधक को जाननेवाले विषय

विशेष रूप से तीन 1) पवित्रता, 2) बुद्धत्व, 3) मुक्त अवस्था।

1) पवित्रता :- अभ्यासी को सर्वप्रथम पवित्रता का ध्यान रखना चाहिए। स्वच्छता ही एकमात्र ऐसी चीज है जो मायने रखती है। लेकिन सिर्फ शरीर ही साफ नहीं होता। आंतरिक शुद्धि भी होनी चाहिए। इसलिए मन, वाणी और शरीर स्वच्छ होना चाहिए।

शरीर को स्वच्छ कैसे रखा जाए, यह सभी जानते हैं, लेकिन बहुत से लोग मन और वाणी को स्वच्छ रखना नहीं जानते। इसके अलावा अभ्यासी के लिए यह जरूरी है कि वह अपने आसपास साफ-सफाई रखे।

मन : यह बहुत से बुरे विचारों और बुरे इरादों से दूषित है। गहन ध्यान करने से मानसिक अशुद्धियां दूर होती हैं और मन शुद्ध होता है।

वाणी:- बोला हुआ प्रत्येक शब्द सरल, सत्य और प्रिय होना चाहिए, झूठ बोलना, दूसरों के बारे में बुरा बोलना, बहुत अधिक बोलना, दूसरों का अपमान करना, यदि इन आदतों से बचा जाए तो वाणी शुद्ध हो जाएगी।

कायम:- यानि शरीर, शरीर को शुद्ध करने के लिए केवल स्नान ही काफी नहीं है, शरीर को धर्माचरण के लिए इस्तेमाल करना चाहिए। उसके लिए शरीर से अच्छे कार्य करने चाहिए। शरीर का उपयोग हमेशा पवित्र कार्यों के लिए किया जाना चाहिए। इसमें लिखा है कि शरीर की सफाई हो जाती है।

परिवेश:- उन्हें साफ रखने का अर्थ है कि यदि हमारा परिवेश हमेशा शांत और स्वच्छ रहेगा तो मन को सुकून मिलेगा और साधना अच्छे से चलेगी। ऐसे मोहल्लों का चयन किया जाना चाहिए।

इन सबका अर्थ है मन, वाणी, शरीर और परिवेश को स्वच्छ रखना हमारे अंदर पवित्रता पैदा करेगा।

2) बुद्धत्व:- बुद्धत्व पवित्रता प्राप्त करने के बाद ही आता है। पत्नी सर कहते थे कि 'हर कोई जिसके पास बुद्धि है वह बुद्ध है। अर्थात् जो भी बुद्धत्व में है उसे 'बुद्ध' कहा जाता है। इस सृष्टि में और किसी भी चीज़ में बुद्धि की शक्ति नहीं है। चाहे हमारे जीवन में अच्छा हो या बुरा, हमारी बुद्धि कारण है। यही कारण है कि अगर हम कुछ गलत करते हैं, 'बुद्धि नहीं है?' कहा जाता है इस सृष्टि में एक राई के बीज का कार्य होने का कारण बुद्ध हैं। इसलिए हम बुद्धि का उपयोग करते हैं.. अनंत परमात्मा के दर्शन

जानना.. क्या अच्छा है और क्या बुरा है इसका अनुभव होना चाहिए। हमें पता होना चाहिए कि हमारे शरीर के लिए कौन सा खाना सही है और उसे खाएं। कौन सी सोच अच्छी है इसे जानकर व्यवहार करना चाहिए। समय-समय पर सद्गुरु द्वारा बताए गए मार्ग पर चलना चाहिए और दिमाग को तेज करना चाहिए। शरीर अनित्य और 'आत्म' नित्य है, इस को जानना और सब को बोधन करना ही बुद्धत्व है।

3) मुक्तस्थिति :- जब हम पवित्रता का अभ्यास करते हैं और बुद्धत्व में ज्ञान प्राप्त करते हैं, तो हम जानेंगे कि शाश्वत क्या है। 'मुक्ता' अवस्था में होना अनित्य के भ्रम से मुक्त होना, शाश्वत और सत्य 'आत्मा' से प्रेम करना है।

हम कुछ भी पीछे नहीं छोड़ते। हर चीज के साथ रहना और सब कुछ छोड़ देना 'मुक्तस्थिति' है। इसलिए शंकराचार्य ने कहा 'मोह का क्षय ही मोक्ष है'। मोक्ष, और मुक्ति एक ही है। यह वही बात है कि बुद्ध संसार में रहकर निर्वाण प्राप्त करना चाहते हैं। महात्मा कहते हैं सब कुछ त्यागना नहीं, बल्कि सब के ऊपर ममकार छोड़ देना। यही 'मुक्तस्थिति' है।

ध्यान साधकों द्वारा पालन किए जाने वाले पाँच नियम

ध्यान साधकों को 5 प्रकार के नियमों का अभ्यास करना चाहिए। वे हैं 1) आत्मा का नियम, 2) भोजन का नियम, 3) समय का नियम, 4) निवास का नियम, 5) संगति का नियम

1) आत्मा का नियम:- जब साधक ध्यान करना शुरू करते हैं, 'अभ्यास कर के हम कैसे आगे बढ़ सकते हैं? पता करने के लिए अभ्यास कैसे करें?' हमें कई चीजों पर शोध करना होगा। पहली बात यह जाननी होगी कि 'आत्मा' क्या है? यह कैसा दिखता है? इसकी विशेषताएं क्या हैं? सब कुछ जान लेना चाहिए। पहले यह जान लेना चाहिए कि 'आत्मा' ही भगवान है। 'आत्मा' पूर्णात्मा से आती है। अर्थात् 'आत्मा' का कोई रूप नहीं है। इसे 'सच्चिदानंद स्वरूप' कहा जाता है। इसका अर्थ है सत, चित, आनंद स्वरूप। 'सत' का अर्थ है सत्य। 'चित' का अर्थ गतिशील और 'आनंदम' का अर्थ है आनंदमय।

साधक व्यवहार में आत्मा को सर्वव्यापी और अनंत के रूप में अनुभव करता है। 'आत्मा' सुई की नोक से भी अति सूक्ष्म रहकर, अणु से भी अति सूक्ष्म रूप में जीवों के शरीर में उपस्थित होती हैं। पेड़ों और जानवरों में 'आत्मा' है लेकिन मन या बुद्धि नहीं है। शरीर द्वारा प्रत्येक कार्य 'आत्मा' ऊर्जा का कारण होता है। 'आत्मा' बीज के समान है। शरीर एक वृक्ष के समान है। बीज कितना भी छोटा क्यों न हो, जब शक्तिशाली होता है तो उससे उत्पन्न हो सकता है।

पेड़ बहुत मजबूत और लाभदायक होता है। इसी प्रकार 'आत्मा' के बलवान होने पर कल्प के समान शरीर होता है, 'आत्मा' के निर्बल होने पर दुर्बल शरीर होता है। हमने जो ज्ञान और संस्कृति अर्जित की है, उसे शरीर छोड़ देता है।

फिर 'आत्मा' इसे अपने साथ ले जाती है। शरीर के साथ 'आत्मा' को 'जीवात्मा' कहा जाता है।

जीवात्मा के कार्य तीन प्रकार के होते हैं:-

1) शरीर और इंद्रियों को ऊर्जावान बनाना।

2) साँस लेने और छोड़ने के रूप में जीवन को लम्बा करना।

3) शरीर से कर्म करना और अनुभव करना। 'आत्मा' का नियम यह है कि अभ्यासी 'आत्मा' के लिए हमेशा 'ध्यान' के माध्यम से 'आत्म ध्यान' में रहना ही 'आत्म' नियम है।

2) आहार नियम :- साधक के लिए आहार नियम भी अत्यंत आवश्यक है। हमारे अंदर जो गुण होते हैं, वे हमारे द्वारा खाए गए भोजन से बनते हैं। गुण हैं तमोगुण, रजोगुण, सात्विक गुण और निर्गुण। तमोगुणम, रजोगुणम 'आत्मा' के अभ्यास में बाधा डालते हैं। इसलिए उन गुणों को उत्तेजित करने वाले पदार्थों का सेवन न करें।

1) तमोगुण को उत्तेजित करने वाले खाद्य पदार्थ:- मादक, संरक्षित, किण्वित, सड़ा हुआ और खराब। जो पकाया और फ्रिज में रखे। इनका सेवन करने से अधिक निद्रा, अज्ञान, भ्रम, पाप कर्मों में असावधानी तथा अन्य प्राणियों को कष्ट देने वाला होता है।

2) रजोगुण को उत्तेजित करने वाले खाद्य पदार्थ:- बहुत अधिक मसाले, बहुत अधिक मिर्च इन रजोगुणों को बढ़ावा देंगे। मांस, मछली और अनाज भी रजोगुण का कारण बनते हैं। शाकाहार में लहसुन भी रजोगुण को उत्पन्न करता है। यह रजोगुण गर्व, क्रोध, अहंकार, स्वार्थ और घमंड का कारण बनता है।

3) सत्वगुण को उत्तेजित करने वाले खाद्य पदार्थ: मीठा, तीखा, और ताजाफल। इन्हें खाने से साधना में आसानी होगी।

वैज्ञानिक मुहावरा है कि :

तामसंबु वीडक, तत्त्वम्बु तेलियदु ।

राजसंबु वीडक रादु मुक्ति सात्त्विकंबु मोक्ष साधनै युन्दु ॥

हम जो भोजन करते हैं वह रक्त में बदल जाता है और शरीर को ऊर्जा देता है ।

इस रक्त में सूक्ष्म तत्व उर्वर होकर बुद्धि को बलवान बनाता है । शुक्राणु में सूक्ष्म पदार्थ ऊर्जा में बदल जाता है और ज्ञान देता है । जीवन शक्ति का सार अमृत में बदल जाता है और मृत्यु को दूर रखता है । ऐसा उत्तम ज्ञान देने वाला भोजन करना चाहिए । अच्छे गुण पैदा करने वाले भोजन का सेवन करें ।

ऐसा छांदोग्योपनिषत् में कहा गया है ।

आहार शुद्धौ सत्त्व शुद्धिः

सत्त्व शुद्धौ ध्यावास्मृति

स्मृति लम्बे सर्व ग्रंथानां, विप्रमोक्षः

भोजन की शुद्धि से मन की शुद्धि होती है । इससे सत्य की शुद्धि होती है । यह भगवान की आत्मा बनाता है । ईश्वर की निरंतर प्रेरणा से हम सभी बंधनों से मुक्त हो जाते हैं ।

इससे हम समझते हैं कि अन्न की शुद्धि से मन अशांत होता है । मन की शुद्धि से हृदय की शुद्धि होती है, और हृदय की शुद्धि से ठोस प्रज्ञा होती है । प्रबल प्रज्ञा के कारण आत्मा के सारे बंधन दूर हो जाते हैं । तो साधकों को किस प्रकार का भोजन करना चाहिए? भगवान कृष्णने इसके प्रकार बताएं हैं ।

श्लोकः युक्ताहार विहारस्य, युक्त चेष्टस्य कर्मसु

युक्त स्वप्नाव बोधस्य योगोभवति दुःखः (भ. गि. 6-17)

उम्मीदवारों को उपयुक्त भोजन (मध्यम, हल्का) खाना चाहिए, उपरोक्त श्लोक द्वारा कहा गया है कि व्यक्ति को उचित विहार (व्यवहार), उचित नींद (मीता निद्रा) उचित कर्म (अच्छे कर्म) करने चाहिए । इसके अलावा साधक अभी भी भोजन के मामले में उलझा हुआ है ।

सावधानियां बरतनी चाहिए।

1) पात्र शुद्धि, 2) पदार्थ शुद्धि, 3) पाक शुद्धि

1) पात्र शुद्धि बर्तन कि शुद्धि :- पात्र शुद्धि का अर्थ बर्तन साफ करना नहीं है। केवल ऐसे बर्तनों का उपयोग करना चाहिए जिनमें मांस न पकाया गया हो। ऐसे बर्तन में बना खाना ही खाना चाहिए। जिस व्यंजन में मांस पकाया गया हो उसमें शाकाहारी भोजन नहीं करना चाहिए। हम पूजा और त्योहारों में मूर्तियों को प्रसाद नहीं चढ़ाते हैं। इसका कारण यह है कि उन पात्रों में किसी जीव की हत्या का पाप होता है। हम इसे 'दूषित' कहते हैं, जिसका अर्थ है कि यह 'बुरा भोजन' है।

जिस पात्र में हमने अपनी बनाई हुई मूर्तियों के लिए मांस नहीं पकाया जाता है, यदि उसमें प्रसाद नहीं पकाते हैं, तो ऐसे पात्र में पका हुआ भोजन हम भगवान द्वारा निर्मित और भगवान द्वारा मापे गए इस शरीर में कैसे रख सकते हैं? देखो हम कितने अज्ञानी हैं.. हम पंचामृत से बनाए गए पत्थरों में भगवान की मूर्तियों का अभिषेक करते हैं। अच्छे बर्तन में पकाए गए भोजन का संदर्भ

हम करते हैं, लेकिन भगवान द्वारा निर्मित और नाप-तौल कर बनाए गए मानव के देहालय में हम शराब का अभिषेक करते हैं और मांस का निवेदन करते हैं।

ऐसे कर्मों के कारण मनुष्य अज्ञान के कारण निरंतर दुःख में रहता है। इसलिए पत्नी जी ने शिरडी ध्यानयज्ञ में कहा कि 'जिन बर्तनों में मांस पकाया जाता है, उन्हें बदल देना चाहिए। पका हुआ पदार्थ नहीं खाना चाहिए'। जब हम ऐसे अच्छे बर्तनों में पका हुआ भोजन करते हैं तो हमें पाप नहीं लगता और हमें रजोगुण की प्राप्ति नहीं होती।

2) पदार्थों की शुद्धि:- कर्ममय शरीर के लिए धर्मयुक्त आहार देना चाहिए। ज्यादातर लोग प्रथम श्रेणी के भोजन के बारे में सोचते हैं। वस्तुतः इसी कारण मनुष्य तृतीय श्रेणी का होता जा रहा है। वास्तव में प्रथम श्रेणी का भोजन वह

है जो शरीर को स्वस्थ बनाता है, मन को शांत करता है और बुद्धि को स्फूर्ति देता है। यदि हम अच्छी साधना चाहते हैं, तो वह तभी आएगी जब हममें आवश्यक गुण होंगे।

मल, मलाई, कीट, काई आदि खाने वाले सूअर, मुर्गे तथा मछलियों का मांस खाने से हमारे अन्दर ज्ञान का नाश होता है। इनका सिर जमीन की ओर होता है। ऐसे जानवरों को भोजन के रूप में खाने से हमारा ज्ञान यह नीचे जाता है लेकिन ऊपर नहीं उठता।

सभी पेड़ सूरज का सामना करते हैं। सूर्य के प्रकाश से बढ़ते हैं। इनका भोजन करने से हमारे अंदर ज्ञान की वृद्धि होती है। दिव्य ज्ञान सबसे पहले सूर्य को सिखाया गया था। (भगवद गीता पर आधारित) इसलिए इसे 'सूर्य ज्ञान का प्रतीक' कहा जाता है। इसलिए उन्हें 'सूर्य भगवान' कहा जाता है। 'दृश्यमान ईश्वर' कहा जाता है। इसलिए हमें शाकाहारी भोजन ही करना चाहिए।

3) पाक शुद्धि :- खाना बनाते समय हमें बहुत प्यार, बहुत शांत और अच्छे दिमाग से खाना बनाना चाहिए। प्रसाद भगवान को रिपोर्ट करने के लिए बड़ी भक्ति और देखभाल के साथ तैयार किए जाते हैं। इसलिए उनका स्वाद इतना अच्छा होता है। इसी तरह आप जिसे भी भोजन दें, उसे प्यार और श्रद्धा के साथ दें। डांटने से अच्छा है नहीं देना। हमारे देश में अतिथि को देवता का रूप माना जाता है। इसलिए उन्होंने कहा 'अतिथि देवो भवः'। हमें ऐसा सोचना चाहिए और उनके लिए खाना बनाना चाहिए। वे हमें 'अन्नपूर्णा सुखीभव' का भी आशीर्वाद देते हैं। आप एक भगवान की तरह महसूस करते हैं।

एक व्यक्ति का आशीर्वाद हमें बहुत अच्छा कर सकता है। इन तीन शुद्धियों अर्थात् चरित्र शुद्धि, भौतिक शुद्धि और पाक शुद्धि का पालन करने से हमारा मन और शरीर बहुत स्वस्थ होता है और शरीर तथा मन के अभ्यास में योगदान देता है।

3) समय नियम :- जिन्होंने साधना प्रारम्भ की है उन्हें भी काल नियम का पालन करना चाहिए। यदि आप रोजाना सुबह एक ही समय नियमित रूप से

ध्यान में बैठते हैं, तो भी कुछ दिनों के बाद शरीर ध्यान का आदी हो जाएगा और ध्यान बेहतर हो जाएगा। समय कीमती है। साधक को कभी भी समय नष्ट नहीं करना चाहिए। सांसारिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए थोड़ा ध्यान ही काफी है। परन्तु 'आत्मा' का ज्ञान प्राप्त करने के लिए कठिन परिश्रम करना पड़ता है।

अभ्यासी को मन बहुत परेशान करता है। जो लोग दिन भर व्यस्त रहते हैं उनके लिए शरीर थका हुआ महसूस करता है और रात को सोना ज़रूरी होता है। जो तमोगुणी होते हैं उन्हें अधिक नींद आती है। इसलिए हम जो आहार का सेवन करते हैं, उन में तमोगुण को उत्पन्न करनेवाले चीजों को छोड़ दिया जाए तो हम नींद को दूर कर सकते हैं। आप रात में ध्यान के लिए बैठ सकते हैं या आप सुबह जल्दी ध्यान कर सकते हैं लेकिन अगर आप हर हफ्ते नियमित रूप से एक ही समय पर ध्यान करते हैं तो ध्यान एक आदत बन जाती है। साधक को समय का दुस्प्रयोग नहीं करना चाहिए, अपितु उसका सदुपयोग करना चाहिए।

4) निवास नियम:- साधक को साधना के लिए उपयुक्त आवास का चुनाव करना चाहिए। किसी की स्थिति के प्रभावों के आधार पर भी भावनाएं उत्पन्न होती हैं। हम जिस स्थान पर भटकते हैं, उससे स्वाभाविक रूप से भावनाएं उत्पन्न होती हैं।

उदाहरण के लिए जब हम एक वेश्या गृह के समीप में रहे तो एक तरह की भावनाएं और मंदिर के सामने होंगे तो पवित्र भावनाएं उत्पन्न होंगी, वैसे ही अपने निवास स्थान और भटकने के स्थान के आधार पर भक्ति और वैराग्य भावनाएं उत्पन्न होती हैं।

एक और उदाहरण देखते हैं:- 'स्वाति' वर्षम के बूंदे कीचड़ भरी खाई में गिरेंगे तो कीचड़ बन जाता है। यदि ताजा पानी तालाब में गिरता है, तो वह ताजा पानी बन जाता है। अगर यह सांप के मुंह में गिर जाए तो जहर की बूंद बन जाती है। मोती सीप में गिरकर मोती बन जाता है। साथ ही स्थिति के अंतर के आधार पर रूप बदलता है। इसलिए साधना स्थल एकांत, शांत और

साधना के लिए उपयुक्त होना चाहिए।

5) सहवास नियम: झ्रंघ का नियमट- साधना के लिए यह अत्यंत आवश्यक है। आजकल अच्छे बनाने वालों से ज्यादा बिगाड़ने वाले दोस्त हैं। इसलिए सही दोस्त चुनें। एक ऐसे घर में पैदा होने के कारण जो मांस का आदी नहीं है, वे मांस के आदी हो रहे हैं। जो लोग साधना को प्राप्त करना चाहते हैं और 'आत्म-ज्ञान' प्राप्त करना चाहते हैं, उनके लिए यह बेहतर है कि वे शराब और मांस को प्रोत्साहित करने वाले मित्रों से छुटकारा पाएं।

साधक को संगति का दोष नहीं होना चाहिए। उदाहरण के लिए, एक राजा एक जंगल में अकेले घोड़े की सवारी कर रहा है। कुछ दूर चलने के बाद एक बड़ा भवन दिखाई दिया। वहां पिंजरे में से एक तोता बोला, 'पकड़ो, पकड़ो, वह भाग रहा है' उसने राजा को डरा दिया और अपने घोड़े पर तेजी से चढ़ा। कुछ दूर जाने के बाद, वह ऋषियों के आश्रम में आया। सामने पिंजरे में एक और तोता था। उसने कहा, 'आओ, आओ, आपका स्वागत है, गुरुजी आ रहे हैं। राजा ने हिम्मत करके कहा, 'क्या! आप यह कहते हैं। कुछ दूर आगे एक और तोता कहता है 'पकड़ो, पकड़ो'। क्यों तुम ऐसा कहते हो और वह वैसा कहते हैं?' तब तोता बोला, 'हम दोनों एक ही माँ के पेट में पैदा हुए थे। वह चोरों के साथ पडकर ऐसा बोला और मैं ऋषि के साथ यह आश्रम में रहकर ऐसा बोल रहा हूँ। सब कुछ संग का दोष है।

देखा! हम जिन लोगों के साथ हैं, उनके विचार, आदतें और राय रहेंगी। इसलिए ध्यान के अभ्यास के लिए ऐसे मित्रों का चयन करना चाहिए जो आत्मज्ञान को बढ़ावा दें।

‘हर कार्य के पीछे एक कारण होता है!

- ब्रह्मर्षि पत्री जी

आत्म-ज्ञान प्राप्त करने के लिए अनुसरणीय विषय

आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करने के लिए इन 5 बातों का विशेष रूप से पालन करना चाहिए 1) सद्गुरु सेवा 2) सत्संग 3) सज्जन सांगत्य 4) स्वाध्याय 5) सेवा।

1) सद्गुरु सेवा:- जो साधक आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करना चाहते हैं उन्हें न केवल ध्यान करना चाहिए बल्कि गुरु जो सिखाते हैं उसका अभ्यास भी करना चाहिए।

लेकिन आजकल बहुत से लोग गुरु बनकर आ रहे हैं। उनमें से नेक की पहचान करना बहुत मुश्किल है। लेकिन अगर हमारे पास थोड़ी बुद्धि और ज्ञान है तो हम इसे पहचान सकते हैं। अच्छे गुरु हमेशा 'सत्य' की शिक्षा देते हैं और 'सत्य' में रहते हैं। वे 'सत्य' के लिए अपना पूरा जीवन लगा देते हैं। वे सत्य के मार्ग पर अपने शिष्यों का मार्गदर्शन करते हैं। ऐसे होते हैं देशवासी, जो हमेशा आत्मज्ञान की शिक्षा देते हैं। 'जानो कि तुम आत्मा हो, शरीर नहीं' सिखाया जाता है। उस मार्ग पर सभी का मार्गदर्शन होता है। ऐसे महान व्यक्ति को अपना गुरु बनाना कई जन्मों का पुण्य फल है, और कुछ नहीं।

इसलिए आदि शंकराचार्य ने कहा 'मनुष्यत्वं, मुमुक्षुत्वम् और महापुरुष दर्शन दुर्लभ हैं'। 'मनुष्यत्वम्' का अर्थ है कि 84 लाख जीवों में, किसी को मानव जन्म में ज्ञान प्राप्त करने का मौका मिलता है। इसके अलावा, किसी को यह पता चलता है कि 'वह भगवान है'। इसलिए, 'मानव जन्म महान है' कहा जाता है।

'मुमुक्षुत्वम्' का अर्थ है मोक्ष की लालसा, 'मोक्ष' का अर्थ है वासना का नाश। यानी हर चीज पर जुनून को दूर करना। कब आयेगा.. जब आपको ये एहसास हो जाये कि 'संसार में चाहे किसी पर अभिमान रहे, उससे सुख थोड़ा

और अनंत दुःख की प्राप्ति होती है। इसके अलावा, जब हम जानते हैं कि जब हम 'आत्मा' पर ध्यान केंद्रित करते हैं, तो हमें असीम खुशी मिलती है, हम अपने जुनून को हर चीज से कम कर सकते हैं। यही मोक्ष की अवस्था है।

इसे जानने के लिए किसी महापुरुष 'सद्गुरु' को खोजना होगा। ऐसे अच्छे शिक्षक मिलना बहुत मुश्किल है। उन्होंने कहा कि, मनुष्यत्वं, मुमुक्षुत्वं, महापुरुष के दर्शन दुर्लभ हैं। और ऐसे महापुरुष समय-समय पर धरती पर अवतरित होते रहते हैं।

और आज पृथ्वी पर मनुष्यों के पास ध्यान या आत्म-ज्ञान नहीं है। बहुत से लोग यह जाने बिना कि मांस खाना पाप है, पाप कर रहे हैं। पत्नी जी महापुरुष (अवतरित पुरुष) हैं जो उन सभी के दोषों को दूर करने और उन्हें सुधारने के लिए पृथ्वी पर आए। और ऐसे लोगों को 'सद्गुरु' कहा जाता है। प्राचीन समय में हर एक युग में प्रत्येक सद्गुरु पृथ्वी पर आए।

कृत युग के लिए	—	दक्षिणा मूर्ति
त्रेता युग के लिए	—	वशिष्ट मुनि
द्वापर युग के लिए	—	व्यास महर्षि
कलियुग के लिए	—	शंकराचार्य

अब फिर से कलियुग का अंत होता है और कृतयुग का आरंभ होता है। और इस सन्धि युग में सद्गुरु पत्नी जी हैं। वे ही हैं जो विश्व भर में आत्मज्ञान की शिक्षा देते हुए कह रहे हैं कि 'सारी पृथ्वी ध्यान करें, सब आत्मज्ञानी बनें'। और ऐसे गुरु को पाकर हम कितने भाग्यशाली हैं!

2) सत्संग:- सत्संगम का अर्थ है 'सत्य' से मिलन और 'सत्य' का अर्थ है 'आत्मा'। इसलिए सत्संग 'आत्मा' के साथ होना है। वह है 'ध्यान'। इसलिए आदि शंकराचार्य ने कहा:

‘सत्संगत्वे निस्संगत्वं है’।

अर्थात् 'सत्य' को निरंतर ग्रहण करने से, अर्थात् ध्यान करने से केवल 'अनासक्ति' आती है। अनासक्ति सबके साथ, सब कुछ, बिना किसी से

या किसी वस्तु के आसक्ति से होना है। तभी अनासक्ति आती है। अर्थात् जल में जो कुछ भी है कमल जल से नहीं जुड़ता हम भी किसी वस्तु से नहीं जुड़ते।

इसका एक उदाहरण: एक बार कृष्ण की आठ पत्नियों ने भोजन देने के लिए यमुना नदी के दूसरी ओर दुर्वासा महात्मा के पास जाने का फैसला किया। नदी तेज बह रही है। फिर कृष्ण से पूछा, 'कैसे जाना है?'। उन्होंने कहा, 'सदा ब्रम्हचारी से रास्ता पूछो, और वे रास्ता देंगे।' जैसे ही उन्होंने पूछा, नदी ने रास्ता दे दिया। फिर उन्होंने नदी पार की और उस स्थान पर वापस आना चाहा, लेकिन नदी ने रास्ता रोक दिया। यह फिर से सत्यभामा ने दुर्वासमुनि से पूछा कि 'अब हम कैसे जाएँ? फिर उन्होंने कहा, पूछो कि नित्योपासी रास्ता देने के लिए कहाँ फिर वह रास्ता देगा।

लेकिन सत्यभामा को बहुत आश्चर्य हुआ। 'वास्तव में तुमने क्या कहा? तुम क्या कर रहे हो?' यह न समझकर, सत्यभामा ने कृष्ण से पूछा, 'आप आठ पत्नियों के साथ यौन संबंध बना रहे हैं। है ना? आप ब्रम्हचारी कैसे हो सकते हैं? हम नहीं समझ पा रहे। इसके अलावा, अगर हमने खाना रखा, तो उसने खा लिया, है ना? और वह नियमित कैसे हो गया?' उसने पूछा। 'समय पूरा होने पर आपको पता चल जाएगा,' भगवान कृष्ण हँसे।

एक दिन कुछ लोगों ने सत्यभामा को खाने पर बुलाया। जब वह खाना खाने बैठी तो उसके सिर पर चाकू रख दिया गया और उन्होंने एक शब्द कहा। 'माँ! आपकी खोपड़ी पर लगे चाकू को आपको छेदे बिना कंधे पर होना चाहिए। यह एक परीक्षा है कि आप अपने अंदर की महानता को जानते हैं या नहीं,' उन्होंने कहा। चाकू कहाँ चिपका था, इस पर ध्यान न देते हुए वह खाना खाकर घर आ गई।

तब कृष्ण ने पूछा, 'क्या तुमने खाया है? क्या क्या पदार्थ रखे थे?' फिर उसने जो कुछ भी हुआ उसे बताया और कहा, 'मुझे याद नहीं है क्योंकि मैं सामग्री पर ध्यान केंद्रित नहीं करती हूँ'। इसलिए मैं सदा ब्रम्हचारी हूँ। क्यों! मैं हमेशा ब्रम्ह में ही चलता हूँ। मैं निस्संग हूँ। इसलिए नदी ने रास्ता दिया, उन्होंने कहा। इसी तरह दुर्वासा ने शरीर को बनाए रखने के लिए खाया लेकिन

स्वाद के लिए नहीं। इसलिए वह शाश्वत है।’

आदि शंकराचार्य ने भी कहा, ‘उदासीनता वैराग्य है’। अर्थात् जब इस संसार में स्रुचि खो जाती है, तो सुख खो जाता है। जब गर्मी चली जाकर उदासीनता आती है।

कहा जाता है कि जुनून न होने पर हर चीज के लिए जुनून गायब हो जाता है। उन्होंने आगे कहा कि ‘मोह शांति है’। अर्थात् जब मन हर बात पर नष्ट हो जाता है, तब मन स्थिर हो जाता है। यह मन ही है जो साधकों को परेशान करता है। यह हमेशा मुझे अतीत की याद दिलाता है और दुख देता है। याद दिलाता है और भविष्य को डराता है। इसलिए उन्हें वयस्क कहा जाता है। ‘दिल एक बार जलता है, लेकिन दिल हमेशा के लिए जलता है’ लेकिन जो सत्संग करता है उसे निस्संग मिलता है। निस्संग के आने पर ही उत्साह भरता है। राग के नष्ट होने पर ही बीज शांत होता है।

उन्होंने ‘निश्चलत्व जीवनमुक्ति’ भी कहा, जिसका अर्थ है कि जब शांति की भावना आती है यानी मन स्थिर हो जाता है। अर्थात् जीते-जी कर्मों की दुर्गन्ध नष्ट हो जायेगी। यानी उन्हें जीवन से मुक्ति मिल जाएगी। इसलिए सत्संग का अर्थ है ध्यान। इसे ही हम ‘साधना’ कहते हैं। साधना वह धन है जो हम स्वयं कमाते हैं। कोई किसी को नहीं दे सकता। इसे अर्जित करना चाहिए।

3) सज्जन सांगत्य :- सज्जन सांगत्य का अर्थ है आत्मज्ञान को जानने वाले। जो जानते हैं कि ‘आत्मा ही ईश्वर है’ ऐसे लोगों से दोस्ती करने से हमारे अंदर का मानसिक अवसाद दूर हो जाता है।

हमारी बातों में सच्चाई है। इससे हम सबका मान बढ़ता है। पाप से दूर रहो। चित्त सदा प्रसन्न रहता है। रईसों की संगति से मनुष्य को बहुत लाभ होता है। इस संसार में अहंकार और अभिमान की नदी में नहीं डूबना चाहिए, अर्थात् ‘सज्जन संगत्य’ नामक एक नाव चाहिए।

अष्टावक्र ने कहा, ‘तीनों लोकों में सबसे बड़ी पवित्र कार्रवाई रईसों की कंपनी में भागीदारी है’।

साथ ही, गोस्वामी तुलसीदास ने कहा, “लोहा ‘परसुवेदि’ को छूते ही सोना बन जाता है। इसी प्रकार श्रेष्ठ पुरुषों की संगति में मूर्ख भी बुद्धिमान हो जाते हैं।” कालिदास, एक मूर्ख, नेक संगति के कारण महान कवियों में से एक बन गया।

एक बार भगवान विष्णु ने राजा बलि से कहा: ‘क्या तुम धर्मियों के साथ नरक जाना चाहोगे? या तुम दुष्टों के साथ स्वर्ग जाना चाहोगे?’ उसने पूछा। उसके लिए, सम्राट बलि ने कहा, ‘मैं सज्जनों के साथ नरक में जाऊंगा’ कारण यह है कि जहां सज्जन हैं, वह स्वर्ग है। बुरे लोग जहां हैं, वह नरक है। इसलिए, की संगति के कारण सज्जनों, नरक भी स्वर्ग बन जाता है। यही कारण है कि सम्राट बलि ने ऐसा करने के लिए कहा। यही कारण है कि पत्नी जी सज्जनों के साथ संबंध नहीं बनाना चाहते हैं।

4) स्वाध्याय:- जिस प्रकार शरीर के सुधार के लिए ‘ध्यान’ आवश्यक है, उसी प्रकार स्वाध्याय आत्म-सुधार के लिए आवश्यक है। इसलिए ‘तैत्तिरीयोपनिषद्’ कहता है कि ‘स्वाध्याय, प्रवचनभ्यः न प्रमादिव्यम’ क्या है और स्वाध्याय कितना महत्वपूर्ण है।

जब टंकी में पानी रूक जाता है तो पानी रूक जाता है और बदबू आने लगती है। साथ ही यदि हम साधना नहीं करते हैं तो मानसिक क्रियाएँ दूषित हो जाती हैं और हमारा ज्ञान भी दूषित हो जाता है। जब ज्ञान सीमित होता है तो हम कुपस्थ मांडूक के समान होते हैं। इसलिए रोजाना एक घंटा ध्यान करना चाहिए। ऐसा करने से हमारे ज्ञान में वृद्धि होती है।

स्वाध्याय के बारे में ऋषि ‘मनु’ ने कहा था। ‘स्वाध्याय सर्वश्रेष्ठ तपस्या है’।

क्योंकि श्रेष्ठ शास्त्रों को पढ़ने से मनुष्य की बुद्धि का विकास होता है। अच्छे कर्म करने की इच्छा। आत्मा परमात्मा का ज्ञान होता है। सभी मनुष्यों के प्रति सहानुभूति, सभी जीवों के प्रति दया और सद्भावना। परोपकार करने की इच्छा होती है। न्याय से जीने की इच्छा पैदा होती है। जीवन का सदुपयोग करने का विचार उत्पन्न होता है। ऐसे लोग समाज में अज्ञानता को दूर करेंगे

और ज्ञान की मशाल जलाएंगे। साधारण मनुष्य भी स्वाध्याय के कारण महात्मा है। हो सकता है 'मनु' ने कहा कि वह विद्वान बन सकता है।

साथ ही ऋग्वेद क्या कहता है कि वह जो भगवान द्वारा प्रस्तावित और ऋषियों द्वारा प्रोत्साहित पवित्र वेद (ज्ञान) का पाठ करता है, वह खुश हो जाता है। शास्त्रों को पढ़ने से उनकी सारी चिंताएं दूर हो जाती हैं। उनकी सारी शंकाएं दूर हो जाएंगी। यह मन में सद्भावना जगाता है और परम शांति प्रदान करता है।

इसके अलावा, स्वामी दयानंद सरस्वती ने क्या कहा, 'जैसे समुद्र में डूबकर रत्न को पाते हैं, वैसे आर्ष ग्रन्थ पढ़ने से महान विषयों को जान सकते हैं।

लोकमान्य तिलक ने क्या कहा "मैं नरक में भी सत्ग्रन्थों का स्वागत करता हूँ। क्योंकि शास्त्र कहाँ बैठे वहाँ उसे स्वर्ग में बदलने की शक्ति है।"

इसलिए स्वाध्याय को यह जानकर ग्रहण करें कि सत् शास्त्रों में जीवन के लिए उपयोगी और उत्थान करने की शक्ति है।

5) सेवा :- साधक के लिए सेवा भी अति आवश्यक है। हम सेवा तभी कर सकते हैं जब सबके लिए प्रेम हो। हम सबसे प्रेम तभी करेंगे जब हम सभी को आत्मिक रूप में देख सकेंगे। हम सेवा तभी करेंगे जब हम सबके प्रति प्रेम रखेंगे। मदर टेरेसा ने बहुत बड़ी सेवा की है। वह सभी को एक बच्चे की तरह प्यार करती थी। सेवा सबसे पहले शरीर की करनी चाहिए। फिर 'आत्म सेवा' करनी चाहिए।

'आत्म सेवा' अर्थात् सभी को ध्यान सिखाना, ध्यान कार्यक्रम आयोजित करना, ध्यान कार्यक्रमों में सहायता करना, ध्यान प्रथाओं में भाग लेना, मांसाहार से बचना और पाप कर्मों से बचना, ये सभी 'आत्मा' सेवाएँ हैं। ज्ञान 'आत्मा' की सेवा है। भूखे को चावल खिलाकर ध्यान की शिक्षा देने से बढ़कर इस संसार में कोई सेवा नहीं है।

आशा

यह आशा के कारण है कि मनुष्य अपने शरीर में 'आत्मा' को जानने में असमर्थ है। जन्म से लेकर मृत्यु तक सांसारिक सुखों में आसक्त होने के कारण वे 'मोक्ष' के बारे में सोच ही नहीं पाते। संसार के समस्त मनुष्यों में 'आत्मा' जो कि ईश्वर का रूप है, 'आशा' की माया से आच्छादित है। भ्रम यह भ्रम है कि नाशवान चीजें वास्तव में मौजूद हैं। उम्मीद रखने वाले तीन तरह के लोग होते हैं।

श्लोक : धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शोमलेनच ।

यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथातेनेदमावृतं ।। (भ.गि.3-38)

तात्पर्य: गीता में भगवान कृष्ण कहते हैं कि यह 'आत्मा' 'आशा' नामक वासना से ढकी हुई है, जैसे धुएँ से आग, गन्दगी से दर्पण, और प्लेसेंटा से बच्चा ढका होता है।

अब हम तीन प्रकार के आशावादी लोगों को देखें।

पहला प्रकार - जैसे अग्नि के चारों ओर धुआँ ढका हुआ है, वैसे इन्हे आत्मज्ञान पाने के लिए 'आशा' नाम के मायाने ढका हुआ है।

इनको संसार में आशा है। जब हवा आग के चारों ओर के धुएँ को छूती है, तो धुआँ प्रज्वलित होता है। इस प्रकार जब वे सद्गुरु के पास पहुँचेंगे तो उनकी करुणा से उनका अज्ञान दूर हो जायेगा और वे सत्य को जान जायेंगे और आत्मज्ञान प्राप्त कर लेंगे।

हमारा परिवार (राघवराव जी) कई व्यवसाय करते थे और कई धर्मार्थ करते थे जब तक पत्नी जी जुड़ें नहीं थे। उन्हें लगा कि वे महान हैं। पत्नी जी से मिलते ही उन्होंने जान लिया कि आत्म ज्ञान सबसे बड़ा उपहार है और ज्ञान सबसे बड़ा उपहार है। तब से वह उसी रास्ते पर हैं। पहले प्रकार का एक उदाहरण राघव राव जी है।

दूसरे प्रकार के हैं:- उनमें आत्म-ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा होती है लेकिन यह

नहीं जानते कि इसे कैसे प्राप्त किया जाए। ऐसे लोगों की इच्छा तो आईने में अपना चेहरा देखने की होती है, लेकिन आईने पर जमी धूल उन्हें देखने में मदद नहीं करती। धूल हटते ही चेहरा नजर आने लगता है। ऐसे लोग भी ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं यदि गुरु के प्रशिक्षण में साधना, संगत्य और स्वाध्याय को अधिक समय दिया जाए।

तीसरे प्रकार के हैं:- जैसे गर्भ में गर्भ से बाहर आने के लिए पर्याप्त शक्ति नहीं है, जिसका मन पूरी तरह से आशा से ढका हुआ है और 'आत्मज्ञान' प्राप्त करने की कोई इच्छा नहीं है। वे सद्गुरु से मिल भी लें तो उनसे ज्ञान प्राप्त करने का विचार भी नहीं करते।

जिसकी अशुद्धि संस्कारों के कारण वे गुरु का आदर या पहचान नहीं करते, ऐसे लोग सांसारिक जीवन में अनेक बाधाओं के बाद आते हैं, या अपने साथियों को साधना करने के बाद मिलने वाले सुख को देखकर बदल जाते हैं।

इसलिए पत्नी जी का कहना है कि सांसारिक जीवन में रहते हुए सभी को 'आत्मज्ञान' प्राप्त करना चाहिए। कहा जाता है कि न तो सांसारिक जीवन का त्याग करना चाहिए और न ही आध्यात्मिक जीवन का त्याग करना चाहिए। एक रूपे का सिक्का तभी मान्य होता है जब दोनों तरफ छपा हो। इसी तरह हमें सांसारिक और आध्यात्मिक दोनों का प्रबंधन करना चाहिए।

धन की अत्यधिक आशा के कारण बहुत से लोग ध्यान का अभ्यास नहीं कर पाते हैं। अत्यधिक आशा के कारण ध्यान अभ्यास के लिए समय नहीं दे पा रहे हैं। 'आशा' स्वाभाविक है, 'लालच' बर्बादी की ओर ले जाता है। लौकिक संसार में लोभ से भागोगे तो दुख ही शेष रह जाएगा।

उसी 'आत्म-ज्ञान' के लिए यदि आप बहुत अधिक अभ्यास करेंगे तो आपको ब्रह्मानंद मिलेगा। सोने की वर्षा हो तो भी मनुष्य तृप्त नहीं हो सकता। आशा कभी नहीं मरती। लेकिन इसमें 'थोड़ी खुशी है, बड़ी कठिनाई है' लेकिन आध्यात्मिक जीवन में 'थोड़ी कठिनाई है, बड़ी खुशी है' इसे जानना चाहिए और 'आत्मज्ञान' प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।

तीन प्रकार की त्रुटियाँ

हमारे अंदर तीन प्रकार के दोषों के कारण हमें आत्म दर्शन और सुख नहीं मिल पाता है। ये तीन प्रकार की त्रुटियाँ कहलाती हैं। वे हैं (1) मलं (2)विक्षेपं (3) आवरण दोष। इनके कारण हम आत्मा को नहीं जान सकते।

मन एक दर्पण की तरह है। हम मन रूपी दर्पण के सामने जो कुछ भी रखते हैं वह प्रतिबिंबित होता है। दुनिया उसी को दर्शाती है। जब कुछ नहीं होता है तो दर्पण कुछ भी नहीं दर्शाता है। इसलिए मन को शुद्ध करने के लिए आवश्यक ज्ञान गुरु से प्राप्त करना चाहिए और मल, विक्षेपण और आवरण के दोषों को दूर करने के लिए नियमित रूप से विश्वास, परिश्रम और दृढ़ता के साथ अभ्यास करना चाहिए। और आइए जानते हैं उन त्रुटियों को कैसे दूर किया जाए।

1) मलं:- मल दोष पांच प्रकार का होता है।

1) अणव मलं:- जब ब्रह्म ज्ञान सिखाया जाता है तब सुनने पर भी परमात्मा को जानने की इच्छा का अभाव।

2) कार्मिक मलं :- जब बड़े-बुजुर्ग धर्मशास्त्रीय विषयों की शिक्षा दे रहे हों, तो उसे शांत मन से सुनना और अन्य बातों पर विचार करना चाहिए।

3) माय मलं:- हमेशा परमात्मा का ध्यान करने की बुद्धि का अभाव रहना।

4) मायेय मलं :- सच्चिदानंद ब्रह्म के प्रति मिथ्या बुद्धि को जन्म देता है और अन्य देवताओं और उन देवताओं के मन्त्रों को मानता है और दूसरों को भी यही सिखाता है।

5) तिरोधान मलं :- इसका अर्थ है हमेशा इच्छा से पाप कर्म करना।

इन्हें 'पंचमल' कहा जाता है। इस त्रुटि से छुटकारा पाने के लिए व्यक्ति को ध्यान से सुनना चाहिए। अर्थात्, गुरु जो कहता है उसे ध्यान से सुनना चाहिए। यह जानकर कि गुरु के शब्द वैदिक शब्द हैं और गुरु का ज्ञान वैदिक ज्ञान है, गुरु का मार्ग सत्य का मार्ग समझकर सत्य के मार्ग पर चलना चाहिए। स्वाध्याय भी अधिक करना चाहिए। मलदोष दूर होता है।

2) व्याकुलता :- वेदांत सरोपनिषद भी कहता है कि ध्यान के दौरान व्याकुलता

आत्म-ज्ञान में बाधक है। यह त्रुटि कैसे होती है कि ध्यान करते समय मन बहिर्मुखी होता है। मन सांसारिक वस्तुओं पर घूमता है। इसे विक्षेपण कहते हैं। इसे नियंत्रित करना बहुत कठिन है।

भटकता हुआ मन एक जगह नहीं टिकता। इसलिए बहिर्मुखी होने पर मन की जांच करनी चाहिए। व्यक्ति को किसी भी विचार के बारे में पूछताछ करनी चाहिए जो उत्पन्न होती है और भौतिक दुनिया की नश्वरता और चीजों के कारण होने वाली पीड़ा के बारे में पूछताछ करनी चाहिए। ध्यान के आनंद का बार-बार ध्यान करना चाहिए। और तो घड़ी-घड़ी याद करना पड़ता है कि मैं आत्मा हूँ।

मन सांसारिक बातों में अनेक भ्रमों में रहता है। पूछताछ उन भ्रमों को दूर कर देगी। जब भी ब्रेक हो तो ज्ञान से जुड़ी बातों का ध्यान करना चाहिए। अधिक सज्जन संगति में भाग लेने से गुरु और बुद्धिमान पुरुषों के साथ समय बिताने से विक्षेप दोष दूर होता है। भटकाव की त्रुटि से छुटकारा पाने के लिए सदैव गुरु द्वारा दिए ज्ञान का ध्यान करना चाहिए।

3) आवरण :- ‘पंच कोशादि योगेन तत्तन्मय इवस्थित :

शुद्धात्मा नीलवस्त्रादि योगेनस्पटि कोयधा ‘

(शंकराचार्य का आत्मबोध 15वां श्लोक)

तात्पर्य:- जैसे नील कपड़े के कारण क्रिस्टल वह रंग की लगती है, वैसे परिशुद्ध आत्मा पंच कोश से सम्बंधित होने के कारण उन स्वरूप को प्राप्त हुआ लगता है।

सभी विषयों को जानना ही ज्ञान है। तलवार को रखने के लिए ‘म्यान’ का उपयोग करते हैं। यह तलवार का आवरण है। इसी प्रकार, जिन बाड़ों में आत्मा निवास करती है, उन्हें कोश कहा जाता है। जब ‘आत्मा’ कोश के साथ सहानुभूति रखती है, ऐसा भ्रम होता है कि खुद आत्मा ही कोश बन गयी है। लेकिन ‘आत्मा’ संबंधित कोशों में डूबी नहीं है। उनके साथ ‘आत्मा’ साक्षी है।

अंतिम लक्ष्य उस आत्मा को जानना है जिसने इन सभी कोशों को सशक्त बनाया है। यह सोचना भ्रांति है कि ये कोश ही आत्मा हैं। यदि यह दोष दूर हो जाए तो हम आत्मा को जान सकते हैं। गहन ध्यान अभ्यास ही इस आवरण दोष को दूर करने का एकमात्र उपाय है। ध्यान के बिना कुछ भी नहीं किया जा सकता। इसलिए सभी को ध्यान करना चाहिए और मल, विक्षेप और आवरण दोष से छुटकारा पाना चाहिए और आत्मा को जानना चाहिए।

संस्कार और गंध (वासनाएं)

संस्कार :- अर्थात् पूर्व जन्म के संस्कार संस्कार कहलाते हैं। शरीर छोड़ने के बाद भी, पिछले जन्म के संस्कार सूक्ष्म और कारण शरीर द्वारा अवशोषित होते हैं और अगले जन्म में प्रदर्शित होते हैं। इसी तरह, इस जीवन के संस्कार यानी आदतें, सूक्ष्म और कारण शरीर अवशोषित होते हैं और अगले जन्म तक ले जाते हैं। संस्कार अच्छे और बुरे होते हैं। अच्छे संस्कार स्वर्ग की ओर ले जाते हैं और बुरे संस्कार नरक की ओर।

स्वर्ग और नर्क कहीं ऊपर नहीं हैं। यह यहाँ इस धरती पर है, इसे यहाँ अनुभव किया जाना चाहिए। स्वाभाविक रूप से, हम निम्न जन्मों के संस्कारों से मुक्त हो जाते हैं और धीरे-धीरे उच्च जन्मों में आ जाते हैं। ये संस्कार अनुभव से मिट जाते हैं। इन बुरी आदतों को कमजोर करने के लिए ज्ञान की जरूरत होती है। तभी वे कमजोर होंगे और नष्ट हो जाएंगे। कितने भी बुरे संस्कार हो, वे ज्ञान से ही नष्ट हो जाते हैं।

वासना:- ये कैसे बनते हैं कि अनेक जन्मों की इच्छाएं, संस्कार मिलकर वासना का निर्माण करते हैं।

कहा जाता है कि 'गंध बंधन है, गंध क्षय मोक्ष है'। मोक्ष हमारा सच्चा स्व है। यह रुढ़िवादी है। गंध ऐसे स्वरूप के अनुभव में बाधक है। ये वासना 3 प्रकार की होती है (1) देहवासना (2) लोकवासना (3) विज्ञानवासना।

1) देहवासना:- मैं शरीर हूँ इस भाव से निर्मित भ्रान्ति, मैं देह हूँ इस भ्रान्ति के कारण ही मैं प्रातः काल उठता हूँ।

आइए स्वास्थ्य के लिए मिलकर काम करें। खूबसूरत दिखने के लिए हम कपड़ों पर ध्यान देते हैं। चेहरे को अच्छा दिखाने के लिए हम तरह-तरह के फेशियल और हेयर कट करवाते हैं। हम कई तरह की क्रीम, पाउडर और

परफ्यूम का इस्तेमाल करते हैं। शरीर की दुर्गंध के कारण हम यह सब कर रहे हैं।

2) लोकवासना :- अर्थात् सम्पत्ति का भ्रम। 'मेरा घर, मेरे बच्चे, मेरी गाड़ी, मेरा बंगला, मेरा खेत' आदि, यह जानते हुए भी कि वे हमारे साथ (आत्मा) नहीं आते, हम उन पर मोहवश मोहित हो जाते हैं। इसे लोक वासना कहते हैं।

3) विज्ञानवासना:- सभी विद्याओं को पढ़ना, सब कुछ जानना, तर्क करना और सबके साथ बहस करना और मन में छाप बनाना। वह सोचता है कि वह जिस विज्ञान को जानता है वह सही है। कोई कितना भी जानता हो, कोई यह नहीं समझ सकता कि जो जानने योग्य है वह अभी भी इस सृष्टि में मौजूद है। वे वहीं रुक जाते हैं। इसे विज्ञान गंध कहते हैं। इन तीनों वासनाओं के नष्ट हो जाने पर ही हमें मुक्ति का लाभ मिलेगा।

‘दूसरों की गलतियों को नहीं देखना और खुद

अपनी गलतियों को सुधारना चाहिए’

- ब्रह्मर्षि पत्री जी

एक अच्छे साधक कि विशेषताएं

यदि आप एक अच्छा अचीवर बनना चाहते हैं, तो आपको उन गुणों को जानना होगा जो आपके पास होने चाहिए। उन लक्षणों को जाने बिना हम कितने ही दिन आंखें बंद कर लें, वह व्यर्थ होगा। तो आइए देखें कि वे क्या हैं।

- 1) भूदेवी की तरह धैर्य रखना चाहिए।
- 2) फूलों में सुगंध होनी चाहिए।
- 3) सूर्य के समान तेज होना चाहिए।
- 4) शेर की तरह निडर होना चाहिए।
- 5) एक शिक्षक की तरह उदार होना चाहिए।
- 6) आकाश की तरह फैलने वाली शक्ति होनी चाहिए।
- 7) बंधनों को छोड़ने की इच्छा होनी चाहिए। आइए इनके बारे में थोड़ा जानते हैं।

1) भूदेवी की तरह धैर्य रखें :-

जैसे पृथ्वी धैर्य रखती है वैसे हम भी धैर्य रखना चाहिए। 'पृथ्वी कैसे धैर्य रखेगी' ऐसे हम सोचते हैं।

जैसे हम मकान बनाते हैं तो नींव डालते हैं। पृथ्वी हमेशा दर्द और पीड़ा है। साथ ही नदियों पर बांध बनाते समय और सड़कें बिछाते समय भी कई धमाकों से जमीन की खुदाई की जाती है। पृथ्वी कभी कुछ नहीं कहती। यह धैर्य के साथ है। इसी प्रकार साधक को अभ्यास में प्रगति के लिए शारीरिक कष्ट सहना पड़ता है। भूदेवी के बाद उतना धैर्य द्रौपदी ने रखा है। ध्यान करते समय धूप, बारिश, ठंड शरीर को परेशानी कर देंगे। लेकिन आपको धैर्य से अभ्यास करना होगा। एक साधक को सबसे पहले धैर्य सीखना चाहिए, और केवल धैर्य से ही हम ध्यान के माध्यम से बहुत कुछ सीखते हैं।

2) फूलों कि सुगंध होनी चाहिए : - सृष्टि का कोई भी फूल अच्छी खुशबू देता

है। हर फूल की एक खास महक होती है। उन महक का आनंद सभी लेते हैं। गंध फूल का एक प्राकृतिक गुण है। मनुष्य के लिए बोलने में सक्षम होना स्वाभाविक है।

साथ ही, सृष्टि के चौरासी लाख जीवों में से केवल मनुष्य ही बोल सकता है। लेकिन वे शब्द कर्म बन जाते हैं। इसलिए शब्दों को बहुत सोच-समझकर बोलना चाहिए। किसी का दिल दुखाए बिना प्यार और धीरे से बोलना चाहिए। तभी पत्नी जी ने कहा, 'आपके शब्द कम से कम आप के लिए उपयोग होनी चाहिए, जो शब्द नहीं उपयोग करने है वह एक शब्द भी हमारे मुँह से नहीं निकलना चाहिए।'

इसलिए हमें हमेशा सत्य वचन बोलना चाहिए। प्यार से बात करने से सभी हमारे दोस्त बन जाते हैं। यदि हम कठोर, गर्व और अहंकार से बोलते हैं, तो सभी हमारे दुश्मन बन जाते हैं। दोस्ती शब्दों से बढ़ती है। विरोधी शब्दों से बनते हैं। साधकों को अत्यंत संभलकर और ध्यानपूर्वक बोलना चाहिए।

हमेशा मुस्कान और प्यार से बोलें। सभी को बोलने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। किसी को निराश नहीं होना चाहिए। ईश्वर को हममें जो गुण प्रिय हैं, प्रेम और करुणा, ये दोनों सृष्टि के प्राणियों के प्रति यदि हम दिखा सकें तो हमारे वचन भी कोमल होंगे। लोगों को हमारी बोली पसंद आनी चाहिए क्योंकि सभी को खुशबू अच्छी लगती है।

3) सूर्य के समान तेज होना चाहिए :- सूर्य के समान प्रकाश का अर्थ है सूर्य के समान होना। सूर्य के समान बनने का अर्थ है सूर्य के गुणों को जानना और उसके समान बनना। सूर्य कोई पक्षपात नहीं करते है। गरीब और अमीर में कोई अंतर नहीं है। वह अपनी किरणें गरीब की कुटिया और महाराजा के किले पर समान रूप से चमकाते हैं। इसमें कोई अंतर नहीं है कि ये उसके हैं और वे ऊपर हैं। नदियों पर, गड्ढों पर, तीर्थों पर, समुद्र पर, वह अपनी किरणों का प्रसारण करते है।

साथ ही हमारा प्यार सबके लिए एक जैसा होना चाहिए। जैसे सूर्य निःस्वार्थ भाव से सब पर समान रूप से अपना प्रकाश फैलाता है, वैसे ही हमें

भी अपने प्रेम, कसूणा, और स्वार्थ को त्याग कर सबको समान रूप से बांटना चाहिए।

4) शेर की तरह निडर होना चाहिए:-

हमें लगता है कि हम अपने डर के कारण कुछ नहीं कर सकते। जब तक अहंकार है, तब तक हमारे भीतर भय है। मौत का भी डर है।

पहले यह जान लें कि अभिमान से क्या भय उत्पन्न होता है। जब धन बढ़ता है और पद आते हैं तो अभिमान होता है। इनके कभी भी गायब होने का डर है। उन्हें बनाए रखने के लिए, उन्हें लुभाया जाता है और बुराई को बढ़ावा दिया जाता है। वे जीवित रहने के लिए बुरे रास्तों पर चले जाते हैं। पाप होते हैं। यदि ऐसा अभिमान न हो तो वे अच्छे मार्ग पर चलने का प्रयत्न करेंगे। इसलिए, जो बिना किसी अभिमान के निर्भीकता से जीते हैं, भले ही उन्हें कुछ अस्थायी नुकसान उठाना पड़े, वे शाश्वत सुख और विजय प्राप्त करेंगे।

अब देखते हैं कि अभिमान से भय कैसे उत्पन्न होता है। स्वाभाविक रूप से उसकी पत्नी, बच्चे, रिस्तेदार और इनकी जाती के लोगों पर अभिमान होता है।

वे झूठ बोलते हैं, धोखा देते हैं और अपनी पत्नियों और बच्चों के लिए प्यार से पाप करते हैं। हमसे दूर हो जाने के डर से वे कई ऐसे काम करते हैं जो उन्हें नहीं करना चाहिए। यदि आपके पास वह भय नहीं है, तो आप हमेशा सच्चाई में रहेंगे।

अज्ञान के कारण यह भय है कि यह शरीर नष्ट हो जाएगा, यह सोच कर कि 'मैं शरीर हूँ', जब तक कोई यह नहीं जानता कि मैं आत्मा हूँ और यह शरीर मैं नहीं हूँ, तब तक मृत्यु का भय है।

जब तक ये डर बना रहता है ये किसी भी काम को करने से डरते हैं। जो निडर हैं वे कुछ भी हासिल करेंगे। जो डरते हैं वे रोज मरते हैं और जीते हैं। इसलिए साधकों को सदैव वीर बनना चाहिए। शेर की तरह निडर होना चाहिए।

5) शिक्षक की तरह उदार होना चाहिए:-

कुछ पीड़ित गुरु और शिक्षित गुरु सब कुछ अपेक्षित करते हैं। लेकिन सद्गुरु बिना किसी अपेक्षा के शिष्यों को शिक्षा देते हैं। शिष्य कितना भी क्रोधित या आहत क्यों न हो, सद्गुरु शिष्य को तब तक नहीं छोड़ते जब तक कि वह ज्ञानी न हो जाए। सद्गुरु बिना किसी स्वार्थ के सबका भला चाहते हैं। अपने उदार स्वभाव के कारण सद्गुरु की तुलना परब्रह्म से की जाती है। साधक को गुरु के समान उत्तम बनने की इच्छा होनी चाहिए।

जब अभ्यासी ऐसे उदार स्वभाव का इस्तेमाल कर सकते हैं तो अभ्यासी भी उस स्तर पर पहुँच सकता है।

6) आकाश की तरह फैलने वाली शक्ति होनी चाहिए:-

साधक आकाश जैसा हो, सर्वत्र हो। आकाश सबको दिखता है। लेकिन यह किसी को नहीं मिल सकता है, इसलिए साधक को सबके साथ रहना चाहिए। यह समुदाय में और हर चीज में होना चाहिए। लेकिन किसी को मत छुओ। आकाश कितना भी ऊँचा क्यों न हो, साधक को भी किसी के अहंकार का बंदी नहीं बनाना चाहिए। उस दिन तुम साधना में अच्छी तरह विकसित हो जाओगे।

7) बंधनों को छोड़ने की इच्छा होनी चाहिए:-

एक साधक के पास यही होना चाहिए। क्योंकि जब आप किसी रिश्ते में होते हैं तो आप अभ्यास नहीं कर सकते। बंधन स्नेह से आता है। बहुत से लोग साधना और ज्ञान के बारे में जानते हैं लेकिन अभिमान के कारण साधना का अभ्यास नहीं कर पाते हैं। यह अभिमान पत्नी, संतान, धन, पद, मित्रों आदि पर होता है। अभिमान के कारण कर्म किए जाते हैं। भले ही वे पाप हों। शायद संस्कार हो सकते हैं। कर्म है तो जन्म नहीं है। जन्म हो तो दुःख अवश्यम्भावी है। अपने सच्चे स्व (आत्मा) को जानने में स्वार्थ सबसे बड़ी बाधा है। आइए इसके उदाहरण के तौर पर जड़ भरत की कहानी को जानते हैं।

जड़ भरत के नाम के मुनि सब कुछ छोड़कर अभ्यास करते मोक्ष पाने के लिए जंगलों में गए।

वहाँ एक आश्रम का निर्माण करके अभ्यास कर रहे थे। एक दिन नहाके आते वक्त रस्ते में उन्होंने देखा कि एक हिरणी बच्चे को जन्म देकर मर गयी। वह मुनि उस छोटी हिरणी को देखकर 'यह मातृवहीन है, इस जंगल में कोई भी जंगली जानवर इस को खा सकता है' ऐसा सोचकर आश्रम में लाकर वह हिरणी को पालने लगा।

ऐसे पालते-पालते उस पर अभिमान बनाएं। जड़ भरत के मरने से पहले वह इस चिंता में मर जाता है कि अगर मैं मर गया तो इस बच्ची का क्या होगा। गीता में कहा गया है कि यदि आप किसी भाव से मरते हैं, तो आप ऐसी भावना के साथ जन्म लेंगे। इसलिए पुनर्जन्म में एक हिरणी के रूप में जनम लेना पड़ा। मतलब अभिमान के बंधन से एक जनम बढ़ गया।

साधक के पास इस जन्म में प्राप्त करने की शक्ति होने पर भी वह इन बंधनों के कारण और जन्म लेने को विवश होता है। यह सब जानने के बाद हमारा ध्यान इस बात पर होना चाहिए कि हम किस लक्ष्य के लिए साधना कर रहे हैं और हमारे मार्ग में कौन-सी बाधाएँ हैं। जो उपयुक्त हो उसे छोड़ें और अभ्यास करें।

अनेक जन्मों में किए गए पुण्यों के कारण हमें एक अच्छा गुरु मिले, गुरु के माध्यम से जानें कि ज्ञान ही अंतिम लक्ष्य है, ज्ञान के मार्ग की बाधाओं को दूर करें और अपने अंतिम लक्ष्य तक पहुँचने के लिए अभ्यास करें।

साधक की बाधाएँ

1) निरक्षरता की बाधा:- अविद्या यह सोचने की कमजोरी है कि मैं जीव और ईश्वर अलग-अलग हूँ, कि मैं एक परतंत्र हूँ, जब तक मुझमें ऐसी कमजोरियाँ हैं, तब तक मुझे नहीं पता कि मैं भगवान हूँ।

2) संज्ञानात्मक अवरोध :- ऐसे लोग किसी की बात नहीं सुनते हैं, भले ही उन्हें बड़ों, गुरुओं और महान लोगों द्वारा सिखाया या कहा जाता हो। दूसरों की अच्छी बातें और आध्यात्मिक बातें सुनने में इन्हें कोई आपत्ति नहीं है। इसे प्रज्ञामंड्यम के नाम से भी जाना जाता है। ऐसे लोग आध्यात्मिक बातों को नहीं समझते। उन बातों को सुनना नहीं चाहते। यदि हम उन्हें जबरदस्ती बैठकर सुनें भी तो उनका मन इन बातों को सुनने में सचि नहीं रखता।

3) कुतर्क :- ऐसे लोग बड़ों के कहे हर शब्द का विपरीत अर्थ निकालते हैं। वे जंगली व्याख्याएं करते हैं लेकिन कही गई बातों का अर्थ समझने की कोशिश नहीं करते।

4) अहंकार :- उनमें 'मैं सब कुछ जानता हूँ' का अहंकार अधिक है। वे अहंकारी हैं कि 'मैं नहीं चाहता कि कोई मुझे बताए, मैं नहीं चाहता कि कोई मुझे सिखाए'।

साधना में कदम रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति को इन गुणों को सीखना चाहिए और ऐसी आदतों को बदलना चाहिए। इसलिए पत्नी जी कहते हैं कि साधना के साथ-साथ स्वाध्याय और सज्जन संगति करनी चाहिए।

आचार्य के सान्निध्य से विनम्र होना आता है। स्वाध्याय से पता चलता है कि हमारे पास कितना ज्ञान है और हमें अभी कितना कुछ सीखने की आवश्यकता है। सज्जन संगति के माध्यम से हम जानते हैं कि हमारी साधना किस स्थिति में है और हमें अपनी साधना को बढ़ाने की कितनी आवश्यकता है।

साधक को हमेशा मायावी होना चाहिए, माया सभी फूलों से अमृत लेती है। एक साधक को भी सबके निकट रहना चाहिए और उनका ज्ञान लेना चाहिए। उसे अपनी बुरी आदतों, दुर्गंधों और आदतों को बदल कर लक्ष्य की ओर बढ़ना चाहिए।

संकल्प भेद

सृष्टि के सभी मनुष्यों की अलग-अलग इच्छाएँ और इरादे होते हैं। 'इच्छा' का अर्थ है बिना प्रयास के जो आप चाहते हैं उसे प्राप्त करना, 'संकल्प' का अर्थ है जो आप चाहते हैं उसके लिए असाधारण प्रयास करना। बिना मेहनत के चाहना, मेहनत करके कमाने का संकल्प करना। मनुष्य के गुणों के आधार पर वसीयतें होती हैं.. आइए जानें कि इन वसीयतों में अंतर कैसे हैं।

मृग संकल्प :-

ऐसे लोग कभी अच्छे कर्म नहीं करते। उन्हें केवल अपने शरीर के आराम की परवाह है। ये अपने सुख के लिए दूसरों का नुकसान करने से भी नहीं हिचकिचाते। दूसरे लोग अपने पैसे का इस्तेमाल अपनी खुशी के लिए करते हैं। वे जो कुछ भी करते हैं, अपने सुख के लिए करते हैं न कि दूसरों के हित के लिए। जो दूसरों का कल्याण किये बिना उनका अहित करते हैं, वे 'द्विपाद पशुवु' इन्द्रो पैर वाले जानवर अर्थात् मनुष्य ट कहलाते हैं।

ऐसे लोगों के संकल्प को जानवरी संकल्प कहा जाता है। उनमें तमोगुण उंचा होगा।

मानव संकल्प :-

उन्हें ईश्वर, सत्य और धार्मिकता में विश्वास है। वे संसार के लिए अच्छे कर्म करते हैं। इनके द्वारा अर्जित धन का उपयोग दैवीय कार्यों में किया जाता है। वे दूसरे लोगों के पैसे का आनंद नहीं लेना चाहते हैं। ईश्वरीय कार्य चाहे कितने भी कठिन क्यों न शुरू हों, वे कोशिश करके उन्हें पूरा करेंगे। उनमें कुछ रजो गुण और अधिक सात्विक गुण होते हैं।

ईश्वर की इच्छा:-

उनमें सत्यगुण उच्च है। जो कोई उनके पास आता है, उसे बिना

सहायता के नहीं भेजा जाता है। नेक काम करते हुए किसी का सहारा न लें।
ये अपने धन का पूरा उपयोग दैवीय कार्यों में करते हैं।

साधु संकल्पः

वे समाज के त्यागी हैं। उनके पास उदासीनता की स्थिति है। वे हमेशा आत्मविश्लेषी और शुद्ध होते हैं। वे सभी से प्यार करते हैं कि सभी चीजों और सभी प्राणियों में शुद्ध चेतना है। वे हमेशा लोगों को पढ़ाना चाहते हैं। उन्हें क्या करना चाहिए? जैसे ही वे हल हो जाते हैं, उन्हें पूरा किया जाना चाहिए।

परमेश्वर की इच्छा:-

उनके लिए, ईश्वर, जो अवतार है, सभी भौतिक वस्तुओं में प्रकट होता है। वे आसानी से निर्विकल्प समाधि अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं। वे आत्मीय और सांसारिक विचारों वाले होते हैं। हमेशा दूसरों को आत्म ज्ञान के लिए प्रेरित करते हैं। अष्टसिद्ध उनकी सेवा के लिए तैयार हैं। वे जीवन से मुक्त हैं चाहे वे पृथ्वी पर कैसे भी हों।

अनैच्छिक (संकल्प रहित) :-

उनका कोई इरादा नहीं है। अणिमादि सिद्धी उनकी सेवा करते हैं। उनके साथ जो होगा सो होगा। त्रिमूर्ति भी अपना कार्य करती है। इन लोगों की कई जन्मों में ईश्वर और गुरु के प्रति भक्ति होती है। उनके द्वारा किए गए अनुष्ठानों के कारण वे इस परिपक्वता तक पहुँचते हैं। जैसे सूर्य के द्वारा अन्धकार का प्रकाश होता है, वैसे ही इनका अवतार अज्ञान का नाश कर जगत् में ज्ञान की वृद्धि करता है। ब्रह्म की अनुभूति अनिच्छुक अवस्था में ही होती है। इस प्रकार भगवद गीता में

यस्य सर्वसमारंभ काम संकल्पवर्जिता :

ज्ञानाग्नि दग्ध कर्माणम तमाहुः पण्डितम ब्रूधा : (भ.गी.4-19)

‘बुद्धिमान आदमी कहते हैं कि -:जिस के सभी कर्म इच्छा और संकल्प के बिना होते हैं, ज्ञान के अग्नि से जिनके कर्म दग्ध हुए हैं, वह पंडित है।

ईश्वर की दृष्टि में, महारत सांसारिक शिक्षा का विषय नहीं है। यदि किसी के पास शुद्ध हृदय है और वासनाओं से मुक्त है और आत्म-ज्ञान है, तो वह स्वामित्व है।

पत्नी जी ने भी एक अवसर पर कहा था। 1) प्रारंभिक जन्मों में हमें वह नहीं मिलता जो हम चाहते हैं बल्कि हमें वह मिलता है जिसके हम हकदार होते हैं। (2) हो सकता है कि कुछ लोगों को बाद में वह न मिले जिसके वे हकदार हैं, लेकिन हम जो चाहते हैं वह अवश्य मिलेगा। (3) पिछले जन्मों में प्रवेश करने के बाद हमें वह भी नहीं मिलता जो हम चाहते हैं। लेकिन हमारे माध्यम से समाज की प्रगति के लिए जो कुछ भी आवश्यक होगा, वह अवश्य ही पूरा होगा।

गुरु जो कहते हैं या भगवान जो कहते हैं, अगर हम नहीं सुनते हैं, अगर हम स्वार्थ के लिए और अपने लाभ के लिए अपना इरादा रखते हैं, तो हम पीड़ित होंगे। इसलिए पत्नी सर कहते हैं कि हम सभी को बिना किसी इरादे के अभ्यास करना चाहिए। ऐसा कहा जाता है कि ‘यदि आप वह करते रहेंगे जो आपको करना है, तो आप जो चाहते हैं वह आएगा।’ अगर हम चाहें तो हमारे पास कुछ है। जान लें कि अगर हम नहीं चाहते तो सब कुछ हमारा है।

पात्र शुद्धि - पदार्थ शुद्धि - पाक शुद्धि

दुख से बाहर निकलने के लिए मनुष्य को आध्यात्मिक रूप से विकसित होने की आवश्यकता है। आध्यात्मिक रूप से विकसित होने के लिए, आपको विशेष रूप से 'श्वास पर ध्यान' रखना चाहिए। आध्यात्मिक विकास के लिए केवल ध्यान ही काफी नहीं है। ध्यान के साथ, आहार नियम भी आवश्यक हैं। आहार नियमों का पालन किए बिना आध्यात्मिक विकास कभी भी संभव नहीं है। इसलिए, आइए जानें कि क्या है किस प्रकार का भोजन ग्रहण करना है।

विशेषकर स्वच्छ भोजन करना चाहिए। क्योंकि ध्यान में मन तभी पवित्र होता है जब भोजन शुद्ध हो। उसी के आधार पर मनुष्य का आध्यात्मिक विकास होता है। और आइए देखें कि खाने में किस तरह की शुद्धता होनी चाहिए। विशेष तीन प्रकार की पवित्रता होनी चाहिए। (1) पात्र शुद्धि, (2) पदार्थ शुद्धि, (3) पाक शुद्धि।

1) पात्र शुद्धि :- सभी के आध्यात्मिक विकास के लिए, पत्री जी आहार के नियमों को बहुत अच्छी तरह से बताते हैं। मांसाहार का अर्थ है मृत भोजन, यानी ऐसा भोजन जो सड़ता और बदबू मारता हो। पहले मांसाहार से परहेज करने के लिए कहा जाता है। केवल मांस ही नहीं खाना चाहिए, बल्कि ऐसे भोजन के लिए प्रयुक्त होने वाले बर्तनों का भी प्रयोग नहीं करना चाहिए।

क्योंकि गलती उनकी भी उस किरदार में है, उदाहरण के लिए हम खेत में इस्तेमाल होने वाले एंजिन बिन को फेंक देते हैं, लेकिन हम उसे साफ नहीं करते और घर में उसका इस्तेमाल करते हैं। क्या यह इसलिए है कि चाहे वह कितना भी साफ क्यों न हो, फिर भी यह हमें कुछ नुकसान पहुँचाता है? जो देखा जाता है हम देखते हैं, लेकिन जो नहीं देखा जाता है, उसे हम नहीं देख सकते। जिस बर्तन में मांस पकाया जाता है उसमें दोष अधिक होता है, यह पत्री

जी जानते हैं। वह प्रत्यक्ष ही नहीं, सूक्ष्म और सूक्ष्म दोषों को भी जानता है। ऐसे वर्तनों में पका हुआ भोजन करने से हमारा मन रजोगुण में बदल जाता है। जिनके पास तमोगुण और रजोगुण है उनके लिए साधना संभव नहीं है। कोई आध्यात्मिक विकास नहीं है। इसलिए हमें पता होना चाहिए कि हमारे आध्यात्मिक विकास के लिए चारित्रिक शुद्धता बहुत जरूरी है।

2) पदार्थ शुद्धि : पत्नी जी कहते हैं कि भौतिक शुद्धि का अर्थ है सड़े-गले और भंडारित खाद्य पदार्थों को न खाना। सेब, केला, कोई भी खाद्य पदार्थ जो सड़ने लगता है वह खराब हो जाता है। एक साइड क्षतिग्रस्त है और बाकी कटी हुई है। हम खाएंगे। लेकिन ऐसा भी नहीं खाना चाहिए। साथ ही पके हुए भोजन को शाम के समय गर्म करके नहीं खाना चाहिए।

फ्रिज में रखी और पकाई हुई कोई भी चीज न खाएं। ऐसी चीजें खाने से न सिर्फ हमारी भूख बढ़ती है बल्कि हमारी साधना में भी बाधा आती है। इसलिए इसे ताजा और गर्म ही पकाना चाहिए। इसलिए पत्नी जी कहते हैं कि भौतिक शुद्धि होनी चाहिए।

3) पाक शुद्धि :- पत्नी जी का कहना है कि पाककला में निखार भी होना चाहिए। कहा जाता है कि अगर इसे ऐसे ही न पकाया जाए तो इसका स्वाद चला जाएगा। यदि आप ध्यान करते हैं और शुद्ध मन से पकाते हैं, तो यह खाने वालों के लिए स्वास्थ्य और खुशी लाता है। सामग्री बहुत स्वादिष्ट होती है। यदि आप बुरे विचारों के साथ खाना बनाते हैं तो इसका प्रभाव खाने वाले पर भी पड़ता है। आइए एक उदाहरण देखें।

एक राजा ने एक दिन एक संत को भोजन के लिए बुलाया। उन साधू के लिए भोजन बनाने वाला, राजा के चाँद के वर्तन देखकर -‘इतना सामान है न! अगर मैंने एक चम्मच निकाल लिया तो कौन जानेगा।’-ऐसे सोचकर एक चम्मच निकाल के अपने जेब में डाला। खाना बनानेवाला इतनी स्वार्थ बुद्धि से ही खाना बनाया।

उस दिन संत भोजन करने आए और एक थैली में चांदी का गिलास लेकर आश्रम चले गए। आश्रम में जाकर गौर से देखने पर चांदी का एक गिलास बाहर गिर गया। तब संत ने सोचा। जब मैं सब कुछ छोड़कर इस आश्रम में आया, तो मैंने फिर इस प्रकार का कर्म क्यों किया? वह हैरान था। उन्होंने अपनी दूरदर्शिता से इसका कारण देखा। उस दिन रसोइया ने क्या सोचा था! वह खाना खाने के बाद उन्हें एहसास हुआ कि उसने ऐसा व्यवहार किया है।

तुरंत राजा के पास जाकर, जो हुआ वो सब बताकर 'तुम्हारे खाना बनाने वाले के पास एक चम्मच मिलेगा, देखिये'- ऐसा बोला। राजा ने देखने पर उसके पास चम्मच मिला।

हमें पता होना चाहिए कि हम जो खाना बनाते हैं उस पर हमारे विचारों का प्रभाव पड़ता है। इसलिए इसे खाने वाले भी ऐसा ही व्यवहार करते हैं।

इसलिए अच्छे विचारों के साथ जब हम खाना पकाते हैं। इस मानसिकता के साथ कि हर कोई स्वस्थ, खुश और अच्छा रहे, अगर इसे बिना किसी बनावटी भाव के पकाया गया है तो खाने वाले पर वह प्रभावी होगा। केवल पदार्थ स्वादिष्ट ही नहीं यह खाने से सबको आनंद प्राप्त होता है।

इसलिए पत्नी जी सबके घर में खाना नहीं खाते खासकर मांसाहारियों के घर में। उन्हें सब कुछ पता है। इसलिए छोटी से छोटी गलती भी बर्दाश्त नहीं होती। कारण यह है कि वे हमारी साधना और आध्यात्मिक विकास में बाधा डालते हैं। अतः यह जान लें कि साधक के लिए अध्ययन भी अत्यंत आवश्यक है। पत्नी जी के बताए मार्ग पर चलकर चरित्र की शुद्धता, सामग्री की शुद्धता और भोजन की शुद्धता का पालन करें। आध्यात्मिक रूप से बढ़ें। अपने दुख से बाहर निकालें।



श्री तटवर्ती वीरा राघवराव का हिन्दी किताब

- | | |
|------------------------|----------|
| 1) आत्म शास्त्र । | Rs.200/- |
| 2) ध्यान विद्या । | Rs.160/- |
| 3) भगवद् गीता का सार | Rs.160/- |
| 4) एक और जन्म । | Rs.160/- |
| 5) सत्य मार्ग । | Rs.150/- |
| 6) भगवान कौन हैं । | Rs.120/- |
| 7) कर्म सिद्धांत । | Rs.120/- |
| 8) ब्रह्म ज्ञान । | Rs.100/- |
| 9) यह जीवन क्यों है? । | Rs.100/- |

For Books please contact :

Tatavarthi Veera Raghavarao

BHIMAVARAM. Ph: 94403 09812

Note from the Publisher

platform for the mind, body & soul.

Are you looking to share your stories and experiences

with the world? We publish a wide range of books

on self-help and spirituality.

Visit our website to explore our books

www.mbpublish.com

Also, feel free to get back to us at **contact@mbpublish.com**,

with any feedback or suggestions! We would love to hear from you.

Call us on **+91 8447749297** for bulk orders,

or if you'd like to publish with us.



**MB
Publishing
House**



/mbpublishinghouse



@mbpublishinghouse



हमारा परिवार



परम गुरु श्री ब्रह्मर्षि पत्री जी ने मेरे जीवन में,
आध्यात्मिक रूप से विकसित होने के लिए मुझे
कई तरह से सहयोग किया। मैंने जो कुछ ज्ञान
लिया उनमें से थोड़े ज्ञान को गुरु की आशीर्वाद
से आपके सामने रखती हूँ। इसे सहृदय से
स्वीकार कर लेंगे, यही आशा करती हूँ।

धन्यवाद!

- तटवर्ति राज्यलक्ष्मी

Rs. 160/-



MB
Publishing
House

f /mbpublishinghouse

@mbpublishinghouse